जागोरी की पत्रिका
मई–अगस्त 2011

हम सबला

पानी और सफ़ाई

हम सबला

मई-अगस्त 2011

इस अंक में

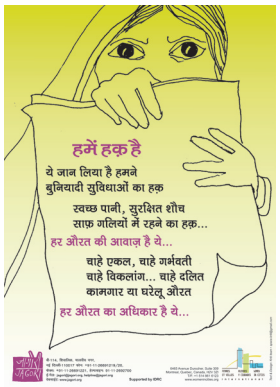

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
कल्याणी मेनन-सेन
खुर्शीद अनवर
सीमा श्रीवास्तव
रत्नमंजरी

सहयोग
प्रभा खोसला

मुखपृष्ठ फ़ोटोः आदिल अली

पिछला पृष्ठः पानी व स्वच्छता पर प्रकाशित जागोरी पोस्टर्स

हम सबला का यह अंक एशियाई शहरों में पानी व स्वच्छता तक महिलाओं की पहुंच व अधिकार (2009-11) शोध अध्ययन का हिस्सा है। यह शोध अध्ययन *जागोरी*, दिल्ली व *विमेन इन सिटीज़ इंटरनेशनल*, कनाडा द्वारा, *इंटरनेशनल डेवलपमेंट रिसर्च सेंटर*, कनाडा के सहयोग से की गई संयुक्त अगुवाई है।

सज्जा व मुद्रणः सिस्टम्स विज़न
systemsvision@gmail.com

जागोरी JAGORI

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110017
ई-मेलः humsabla.patrika@jagori.org
वेबसाइटः www.jagori.org
दूरभाषः 26691219, 26691220
हेल्पलाइनः 26692700

हमारी बात — प्रभा खोसला — 1

लेख
बात सिर्फ़ नल व पाइप की नहीं, औरतों के जीवन की है — पामेला फिलीपोज़ — 3
जल व ज़मीन पर औरतों का हक़ — सीमा कुलकर्णी — 5
लिंग संवेदी शौचालय व महिला सुरक्षा — प्रभा खोसला — 9
बेहतर शहरी बस्तियांः बेहतर स्वास्थ्य — बीजल भट्ट — 21
आजीविका के लिए आवाज़ — शशि भूषण पंडित — 31
जल खण्ड के लिए जेंडर अनुकूल बजट — 39

कविता
कचरा बीनने वाली लड़कियां — भगवत रावत — 8
देश बरबाद किया — कमला भसीन — 13
खुरदुरी हथेलियां — अनामिका — 38

संवाद
नए विधायकों के लिए सबक — कल्पना शर्मा — 12
युवाओं की मांग-एक स्वच्छ पर्यावरण — अदिति बिश्नोई — 17
बवाना कल और आज — कैलाश भट्ट — 42

कहानी
रमिया — नमिता सिंह — 24

आमने-सामने
एक सराहनीय पहल — मरिया व इन्दू — 14
मैनुअल स्केवेन्जिंग-कब तक? — नंदिता सेनगुप्ता — 19

आपबीती
अब मैं कोई अनजान नहीं हूं — 23
निश्चय — चैताली हालदार — 37

अभियान
बदलाव के लिए अगुवाई — सरिता बलोनी — 34
एशियाई शहरों में पानी व स्वच्छता तक महिलाओं की पहुंच व अधिकार — जुही जैन

पुस्तक परिचय
नक़्शे से बाहरः दिल्ली में बेदख़ली और पुनर्वास के बाद ज़िन्दगी (2009-11) — कल्याणी मेनन-सेन, गौतम भान — 44

फ़िल्म समीक्षा
कामयाबी की लहर — सुनीता ठाकुर — 47

शहरों में महिलाओं के पानी व स्वच्छता पर अधिकार

पानी के अधिकार को लेकर असंख्य अंतर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व राष्ट्रीय सम्मेलन, घोषणापत्र, समझौते व वादे हमारे सामने मौजूद हैं। नवम्बर 2002 में आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समिति ने अपनी 'सामान्य टिप्पणी' में 'पानी के अधिकार' को स्वीकृति भी प्रदान कर दी है। यह टिप्पणी संगठनों पर बाध्य नहीं है परन्तु इसका प्रभाव आधिकारिक अवश्य है। 28 जुलाई 2010 को संयुक्त राष्ट्र जनरल असेंबली के प्रस्ताव ए/रेस/64/292 ने भी यह "पहचाना कि सुरक्षित व साफ़ पेयजल और स्वच्छता का अधिकार मानवाधिकार है जो जीवन व समस्त मानव अधिकारों का उपभोग करने के लिए आवश्यक है।" हाल ही में अप्रैल 2011 में आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र ने जल व स्वच्छता के मानवाधिकार पर संधि का समर्थन किया है और उस पर हस्ताक्षर करने वाले 160 देशों पर उसे कानूनन बाध्य बनाया है। वियाना घोषणा व प्लान ऑफ़ एक्शन 1993 में दर्ज है— "महिलाओं व बालिका शिशु के मानवाधिकार व्यापक मानव अधिकारों का अविभाज्य, व समग्र हिस्सा हैं।" इतने सारे सशक्त अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज़ों और दशकों के अथक प्रयासों के बावजूद और जिनमें कुछ लिंग संवेदी भी हैं महिला कार्यकर्ता, व्यावसायिकों तथा जल खण्ड के पक्षधर यह सोचने पर बाध्य हैं कि आखिर महिलाओं व लड़कियों को संसाधनों पर कब बराबरी का हक़ तथा जल खण्ड में निर्णायक अधिकार मिल पाएंगे?

अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय कानून में अधिकारों की बात होने का अर्थ यह नहीं होता कि सभी लोगों विशेषतः निम्न आय वर्ग के स्त्री-पुरुषों के वे तमाम जल व स्वच्छता सेवाएं मिल पाएंगी जिनकी उन्हें ज़रूरत है। इसके अलावा शहरी तबकों में जल व स्वच्छता सेवाओं तक पहुंच की बात ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अभी हाल ही में शुरू हुई है।

1979 देशों में कानूनी तौर पर बाध्य सीडॉ दस्तावेज़ के परिशिष्ट 14 (2) के अनुसार, "ग्रामीण इलाकों में औरतों के प्रति भेदभाव को खत्म करना जिससे सभी पुरुष व स्त्रियां समान रूप से, ग्रामीण विकास में भागीदार व लाभार्थी बन सकें, विशेषतः महिलाओं के लिए अधिकार सुनिश्चित हों: (च) उपयुक्त रिहाइशी हालात, विशेषतः आवास, स्वच्छता, बिजली, जल आपूर्ति, परिवहन व संचार। हालांकि सीडॉ में निम्न आय वर्ग की शहरी महिलाओं के जल व स्वच्छता अधिकारों की कोई बात नहीं की गई है, फिर भी यह माना जा सकता है कि इसमें शहरी महिलाओं के हक़ भी शामिल हैं। आज संयुक्त राष्ट्र के दूसरे दस्तावेज़ भी निम्न आय शहरी नागरिकों के अधिकारों की बात कर रहें हैं।

अब प्रश्न यह है कि 'आम' औरतों को दस्तावेज़ों के ज़रिए मिले ये अधिकार पानी, स्वच्छता सेवाओं तथा सुरक्षा, स्वास्थ्य व सुख के बुनियादी हक़ों के लिए संगठित होने के लिए कैसे तैयार करता है? महिलाओं के लिए

एक मानव अधिकार ढांचा औरतों को हिंसा, कमतरी व दरकिनार होने के अनुभवों को परिभाषित, विश्लेषित व सवा्क बनाने और परिवर्तन के लिए विविध दृष्टिकोण व ठोस रणनीतियां विकसित करने के लिए सशक्त करता है। अब महिलाओं के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे मानव अधिकार विमर्श में बदलाव लाएं और उसमें महिलाओं के जीवन के 'सार्वजनिक' व 'निजी' क्षेत्रों में विभाजन, देखभाल अर्थव्यवस्था में औरतों के काम के कारण जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव तथा लड़कियों व महिलाओं पर हिंसा व असुरक्षा के विभिन्न स्वरूपों का विश्व-व्यापी चक्र इसमें शामिल करें। महिलाओं के मानवाधिकार में शहर पर अधिकार तथा शहरी स्वरूप, कार्य, बजट व सेवाएं भी सम्मिलित हों।

परन्तु पानी व स्वच्छता के मानवाधिकार का वास्तविक अर्थ क्या है? या फिर ये कहा जाए कि इस अधिकार के औरतों के लिए क्या मायने हैं? गरीब व हाशिए पर रहने वाली शहरी महिलाओं के लिए इन हक़ों का क्या मतलब है? महिलाओं के अधिकार का नज़रिया जल खण्ड में एक नया आयाम जोड़ देता है। साफ़ पानी और सफ़ाई सेवाओं का प्रावधान अब गरीब औरतों के लिए कल्याणकारी सेवा नहीं बल्कि एक कानूनी अधिकार है। हालांकि कोई भी मानवाधिकार ढांचा वित्त, नियंत्रण, वितरण संबंधी नीतिगत मुद्दों को हल नहीं कर सकता परन्तु यह इस खण्ड में राजनैतिक व आर्थिक निर्णय क्षमता के लिए मार्गदर्शन अवश्य करता है।

महिलाओं के पानी व स्वच्छता अधिकार लिंग-संवेदी मानवाधिकार ढांचे तथा मानव अधिकारों को सुरक्षा व प्रोत्साहन देने वाले शहरी विकास के संदर्भ में ही हासिल किए जा सकते हैं। इसमें लिंग-संवेदी मानकों के साथ-साथ मौजूदा शहरी योजनाओं, नीतियों व बजट में मानवाधिकार सम्मिलित करने वाले नियम और कारक भी मौजूद होने चाहिए। इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा कि शहरी प्रशासन में समानता, निरपेक्षता, जवाबदेही, पारदर्शिता, सशक्तता, सकारात्मक सक्रियता व भागीदारी के नियम अंतर-संबंध व लिंग संवेदनशीलता पर आधारित हों।

महिला मानवाधिकार आधारित दृष्टिकोण प्रशासन में जवाबदेही व पारदर्शिता की भी मांग करता है। इसके लिए ज़रूरी है कि कानून, नीतियों, संस्थानों, प्रशासनिक तरीकों व प्रतिकार प्रक्रियाओं में लिंग संवेदी सुधार किए जाएं। इस प्रक्रिया व रूपरेखा को निर्धारित करने से स्थानीय, राज्य सरकारों व सेवादाताओं का यह दायित्व सुनिश्चित किया जा सकेगा कि सुरक्षित पेयजल व स्वच्छता का अधिकार हक़दारों को मुहैया हो।

जवाबदेही व पारदर्शिता के लिए यह भी ज़रूरी है कि जल खण्ड व स्थानीय सरकारों के हर स्तर पर लिंग-असंकलित आंकड़ें इकट्ठे किए जाएं क्योंकि ये जानकारी व निगरानी तक महिलाओं की पहुंच बढ़ाने के लिए ज़रूरी हैं। गरीब व लिंग संवेदी निगरानी ढांचा जिसे अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थान व प्रणाली, निम्न आय वाली महिलाएं, राज्य, स्थानीय सरकारें व नागरिक समाज लागू करें, की मदद से भी इन अधिकारों को हासिल किया जा सकता है।

इन सभी बातों के साथ-साथ हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि पानी व स्वच्छता पर महिलाओं के अधिकारों को निजीकरण से खतरा है। आज के दौर में नगरपालिका सेवाएं, सहूलियतें व आधारभूत ढांचों पर निजी एजेंसियों का नियंत्रण बढ़ता जा रहा है। लिहाज़ा किसी भी सार्वजनिक निजी भागीदारी प्रणाली का सरकारी सहमति से पहले महिला मानवाधिकार कसौटी पर जांचा जाना महत्वपूर्ण है।

शहरी पानी व स्वच्छता कार्यक्रमों, सेवाओं व आधारभूत ढांचों के नियोजन व प्रारूपण में महिलाओं की भागीदारी, जल व स्वच्छता खण्ड में लिंग संवेदी बजट; जल व सफ़ाई मंत्रालयों स्थानीय सरकारी विभागों व सुविधाओं में अधिक महिला कामगारों की नियुक्ति; शैक्षिक संस्थानों में महिलाओं की पहुंच बढ़ाना तथा महत्वपूर्ण संस्थानों में जेंडर प्रशिक्षण शामिल करने से यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि महिलाओं के लिए जल व स्वच्छता सेवाएं सतत व नियमित हों।

–प्रभा खोसला

प्रभा खोसला शहरी नियोजक हैं। वे जेंडर व शहरों पर महिलाओं के अधिकारों पर काम के साथ लम्बे समय से जुड़ी हैं।

लेख

बात सिर्फ़ नल व पाइप की नहीं, औरतों के जीवन की है

पामेला फिलीपोज़

ऊंच-नीच से भरे विश्व के लोगों के बीच गहराती खाइयों के मध्य एक ऐसी दुनिया है जिसके बारे में शायद ही कभी लिखा-सुना जाता है। शहरी विशेषज्ञ, माइक डेविस एक अपवाद है। अपनी पुस्तक *"प्लैनिट ऑफ़ स्लम्स"* में डेविस 'तीसरी दुनिया शहर' के उस खांचे को अनावृत्त करते हैं जहां पानी व सीवर सुविधाएं आज भी उन करोड़ों लोगों की पहुंच से परे है जो पुनर्वास बस्तियों और झोपड़पट्टी कस्बों में बसते हैं। डेविस लिखते हैं— "दूसरे लोगों के कूड़ा करकट से नियमित तौर पर अंतरंगता सर्वाधिक गहन सामाजिक विभाजन है... मल में रहने की विवशता दो अस्तित्वात्मक मानवताओं को विभाजित करती है।"

अपर्याप्त खान-पान या आर्थिक गरीबी की तरह साफ़ पानी व शौचालयों का अभाव नागरिकों के स्वास्थ्य, सुख व प्रगति को क्षति पहुंचाता है। मानव विकास रिपोर्ट 2006 जिसमें "पानी व स्वच्छता की तंगी को इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी मानव विकास चुनौती" कहा गया है, के अनुसार, आज विश्व में 1.1 अरब लोग यह नहीं जानते कि अपने घर के नल से साफ़ पानी आना क्या होता है तथा 2.6 अरब लोगों के पास मूल सफ़ाई के साधनों का अभाव है। पर इतनी बड़ी संख्याएं होने के बावजूद इस समस्या पर चुप्पी बनी हुई है क्योंकि इससे प्रभावित होने वाले नागरिक समाज में सबसे कम प्रत्यक्ष, प्रभावशाली व सवाक् हैं।

इन हालातों की सबसे अधिक कीमत महिलाओं को चुकानी पड़ती है। यह कीमत केवल समय और पैसे की ही नहीं बल्कि उनकी अपनी सुरक्षा व सम्मान की भी है। गरीब, अशक्त, बेआवाज़ और 'गलत' लिंग की होने के कारण उन्हें प्रशासन की जड़ता को झेलना पड़ता है। दिल्ली की पुनर्वास बस्तियों व झुग्गी-झोपड़ियों के बीच कार्यरत गैर सरकारी संगठन, *सेंटर फ़ॉर अर्बन एण्ड रीज़नल एक्सेलेंस* की निदेशक रेणु खोसला कहती हैं—"सौभाग्यशाली शहरी होने के नाते हम पानी व स्वच्छता सुविधाओं को सहज ही मान लेते हैं। पर अगर आप बस्तियों व पुनर्वास क्षेत्रों में महिलाओं से बात करेंगे तो जान पाएंगे कि उनका प्राथमिक सरोकार इन सेवाओं तक पहुंच के लिए अंतहीन संघर्ष है। पर हमारे प्रशासकों, नियोजकों व इंजीनियरों के लिए ये औरतें शायद मौजूद ही नहीं हैं।"

विडम्बना यह है कि सरकारी विभागों में कोई भी उस कीमत का अनुमान नहीं लगा रहा है जिसकी अदायगी वे लोग कर रहे हैं जिनमें इसे चुकाने का सामर्थ्य ही नहीं है। एक शौचालय को इस्तेमाल करने की कीमत को ही ले लें। चूंकि बस्तियों और रिहाइशी डेरों में पाखाने नहीं होते लिहाज़ा पांच व्यक्तियों वाला परिवार कम से कम तीन सौ रुपये माहवार केवल इस सुविधा पर खर्च करता है। अगर इस रकम पर आप थोड़ा अधिक ध्यान दें तो दैनिक जीवन की तकलीफ़देय सच्चाई से हम रूबरू होंगे— कैसे पैसे बचाने के लिए महिलाएं शौचालय उपयोग से बचती हैं और नतीजन गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं सहती हैं।

फ़ोटो: विमेंस फ़ीचर सर्विस

भल्स्वा में युवा लड़कियां टैंकर से पानी भरकर ले जाती हैं।

इसके अलावा जब रुकी हुए नालियों व गटर का पानी पेयजल स्रोतों में मिल जाता है तब अन्य जल संक्रमण रोग भी इन इलाकों में फैल जाते हैं। रेणु खोसला की संस्था ने आगरा बस्ती में इन बीमारियों

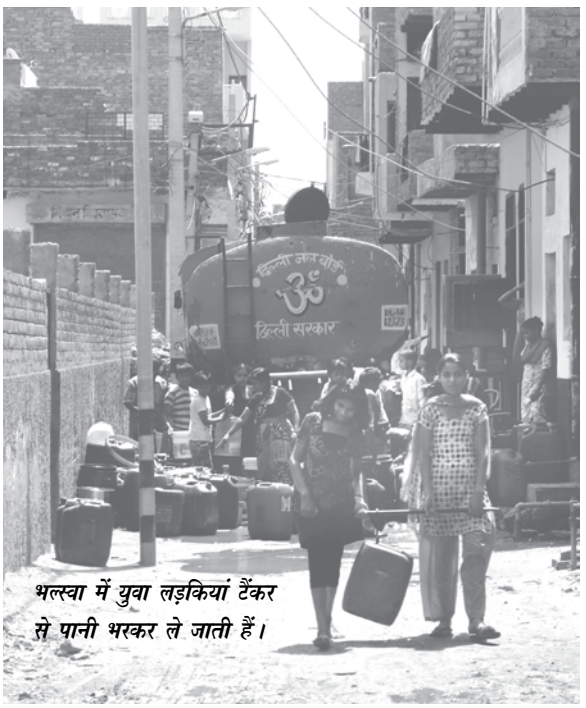

पर होने वाले खर्चे और वक्त की लागत पर एक अध्ययन किया है। आकड़ों के अनुसार एक परिवार सात सौ रुपये मासिक केवल जल संक्रमित बीमारियों के निदान पर खर्च करता है। मानव विकास रिपोर्ट 2006 के अनुसार "जल व स्वच्छता दो सर्वाधिक सशक्त बचावकारी औषधियां हैं जिनका उपयोग सरकार संक्रमित रोगों को घटाने के लिए कर सकती है।"

स्थानीय टैंकर, चांपाकल या स्थाई स्रोत से पानी भरना एक वृहद तनावकारी गतिविधि है— पड़ौसियों से झगड़ा-टंटा तथा परिवारों के बीच तनाव। यह बच्चों की पढ़ाई-लिखाई प्रभावित करने व असुरक्षा व दुश्मनी बढ़ाने के साथ-साथ अवसरवादी कीमतें भी अदा करता है। इतनी परेशानियों के बाद मिलने वाले पानी का स्तर भी अक्सर अगाध होता है। एक लम्बी कतार में घंटों खड़े रहने के बाद मरे हुए चूहे या कीड़ों से भरे पानी का मिलना ही नसीब होता है।

सार्वजनिक पाखानों में भी कुछ इसी तरह की बेरूखी व्याप्त है; उनकी देखभाल ठेकों पर दे दी जाती है और इसमें इतने अधिक पक्ष शामिल होते हैं कि कोई संस्थान या व्यक्ति पानी खत्म होने, बिजली न चालू होने अथवा सुविधाओं के मनमर्ज़ी अनुसार बंद कर दिए जाने की सूरत पर उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। महिलाएं माहवारी के समय निष्क्रिय शौचालयों की तकलीफ़ से जूझने की गंभीर चुनौतियों की बात भी करती हैं। सार्वजनिक निकाय इन ज़रूरतों से अप्रभावित रहता है और यह धारणा बना लेता है कि इन लोगों को साफ़ पानी और सुविधाजनक पाखानों की कोई ज़रूरत नहीं हो सकती।

पर अब हालात बदल रहे हैं। महिला कार्यकर्ता व नागरिक समाज संगठन यह समझ रहे हैं कि महिलाओं के जीवन में मौकों व चयन की बढ़ोत्तरी साफ़ पानी व चालू शौचालय जैसे बुनियादी मुद्दों पर आधारित है।

अब चार अनिवार्य बातों को पुनः दोहराना अति आवश्यक हो गया है। पहला, हाशिए पर रहने वालों के जीवन की सच्चाइयों पर आम समझ को विस्तृत करना। भारतीय मध्य वर्ग ने लम्बे समय से गरीबों को गंदे माहौल में रहने के लिए दोषी करार दिया है। पर जैसा कि पुनर्वास बस्ती में रहने वाली दिल्ली की एक महिला ने टिप्पणी की, "हम ऐसे रहना नहीं चाहते, हम खुले में शौच नहीं जाना चाहते। पर जब गटर भरकर बह रहे हों और सार्वजनिक शौचालयों पर ताला बंद हो तो हम क्या करें?" जैसा कि विक्टर हूगो ने अपनी किताब *'ले मिसरेबल्स'* में उल्लेख किया है, "सीवर शहर की आत्मा है... सब कुछ बयान कर देता है।"

दूसरा, हमें पानी व सफ़ाई को महिलाओं का मुद्दा समझना होगा जो व्यक्तिगत सुरक्षा व निजी सम्मान से संबद्ध है। *जागोरी* की सलाहकार प्रभा खोसला के शब्दों में, 'मेरे लिए 'सम्मान' शब्द महिला अधिकारों के संदर्भ में गुंथा होना चाहिए। इसे महिलाओं को रोज़मर्रा के जीवन को समेटने के लिए व्यापक बनाया जाना चाहिए।'

समुदायों को खासकर औरतों के पानी व स्वच्छता के अधिकारों के प्रति और अधिक सवा्क बनाना तीसरा अहम् पहलू है। गरीब लोग इसलिए ठगे गए हैं क्योंकि नीति निर्माता व प्रशासक समझते हैं कि वे उन्हें बरगला सकते हैं। यहां पर नेतृत्व विकास व जागरूकता ने प्रभावशाली परिणाम प्रस्तुत किए हैं— सार्वजनिक रूप से बोलने में हिचकने वाली औरतें आज वरिष्ठ नेताओं व नगरपालिका अधिकारियों से जवाब-तलब कर रही हैं।

और अंततः चौथा काम है सराकारों व स्थानीय निकायों के पुरातनवादी व जड़ रवैयों में परिवर्तन लाना। प्रभा बताती हैं कि कैसे युगांडा में एक इंजीनियर को उन्हें यह बार-बार समझाना पड़ा कि सार्वजनिक सुविधाओं के निर्माण से पूर्व महिलाओं से मश्विरा करने की ज़रूरत महत्वपूर्ण क्यों है। "सरकार व सार्वजनिक अधिकारी आधारभूत सुविधाओं को लिंग निरपेक्ष समझते हैं। स्त्री व पुरुष दोनों के लिए पाइप पाइप हैं और नल नल हैं। यह तो सामान्य ज्ञान की बात है। पर मामला सिर्फ़ यही नहीं है। हम जानते हैं कि शौचालय के प्रारूप मात्र से ही महिलाओं पर प्रबल प्रभाव पड़ सकते हैं।"

तो फिर सवाल यह है: महिलाओं के सरोकार नीति निर्धारण व कार्यान्वयन को कितने गहरे तक प्रभावित करते हैं? आखिरकार, यह मुद्दा महज़ गरीबी का नहीं है बल्कि नीति-निर्धारण की गरीबी का है। यह केवल नलों और पाइपों की बात नहीं है। यह बात है महिलाओं रोज़मर्रा के जीवन की।

पामेला फिलीपोज़ *विमेंस फ़ीचर सर्विस, नई दिल्ली की निदेशक हैं।*

लेख

जल व ज़मीन पर औरतों का हक़

सीमा कुलकर्णी

दुनिया भर में औरतों का पानी के साथ एक खास रिश्ता है—वे सामाजिक, सांस्कृतिक व जीवन को सतत बनाए रखने में उसकी अहमियत जानती हैं। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। देश भर की गरीब औरतें विशेषतः ग्रामीण व आदिवासी हिस्सों में बसी औरतें एक मटके पानी की तलाश में मीलों दूर तक जाती हैं। परन्तु ज़मीनी अधिकारों के अभाव में वे उत्पादन के लिए पानी अर्जित करने अथवा नई नीतियों के संदर्भ में गठित जल उपयोगकर्ता संस्थानों की सक्रिय सदस्य नहीं बन पाती हैं।

पानी तक पहुंच विभिन्न सामाजिक, तकनीकी व उत्पादन संबंधों द्वारा मध्यस्त होती है। वर्ग, जाति, लिंग, जातीय समूहों व अल्पसंख्यकों के आधार पर किया सामाजिक विभाजन सामाजिक जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। सम्पत्ति, तकनीक, ज्ञान व जानकारी तक पहुंच व निर्णय प्रक्रियाओं पर भी इस विभाजन का असर पड़ता है। पानी के संदर्भ में भी इन सभी कारकों का प्रभाव पड़ता है।

पानी के इर्द-गिर्द विभिन्न गतिविधियों, पहुंच नियंत्रण, निर्णय, ज्ञान आदि में इस असमानता को देखा जा सकता है। भारत में जहां तक उत्पादक जल का प्रश्न है, महिलाएं कृषि सिंचाई में विस्तृत रूप से शामिल हैं। लगभग 40 प्रतिशत महिलाएं कृषि संबंधी गतिविधियों में बतौर प्रशासक व मज़दूर जुड़ी हैं। महिलाएं मत्स्य पालन व लघु कुटीर उद्योगों में भी शामिल हैं। कृषि सिंचाई से जुड़ी होने के बावजूद वे प्रमुख निणार्यक समूहों का हिस्सा नहीं हैं। और न ही उत्पादन के लिए आवश्यक पानी तक उनकी पहुंच

है क्योंकि यह ज़मीन पर मालिकाना हक़ से सीधे तौर पर संबंधित है।

औरतों ने महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद सिंचाई को पुरुष प्रधान क्षेत्र के रूप में देखा जाता है। लिहाज़ा सार्वजनिक क्षेत्र में सिंचाई का प्रशासन करने वाले जल उपयोगी संस्थानों में महिलाओं को निर्णायक प्रक्रियाओं में शामिल नहीं किया जाता। इन सभी कारणों को ध्यान में रखते हुए *सोपीकॉम संस्थान* ने सिंचाई खण्ड में महिलाओं की प्रत्यक्षता बढ़ाने के उद्देश्य से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

मराठवाड़ा क्षेत्र के सूखाग्रस्त उस्मानाबाद ज़िले में खुदावड़ी गांव है। यह गांव बोढ़ी माध्यम सिंचाई परियोजना के अंतिम छोर पर स्थित है। परियोजना समाप्त होने के बावजूद यहां पर सिंचाई का पानी नहीं पहुंचता था। इसलिए गांववासियों ने एकजुट होकर एक जल उपयोगकर्ता समिति का गठन किया। अनेक चर्चाओं व बहसों के बाद पानी के समान वितरण के लिए यह तय किया गया कि पहली बार में सभी ज़मींदार एक हेक्टेयर ज़मीन की सिंचाई करेगें और अगर अतिरिक्त पानी बचा तो ज़्यादा ज़मीन वाले इस पानी का इस्तेमाल कर सकते हैं।

नहर के अधिकार क्षेत्र के बाहर पड़ने वाले इलाके में पानी आबंटन के नियमों को लेकर अधिक मुश्किलें थीं। काफी बातचीत और कुछ विरोध के बाद निश्चित किया गया कि 15 प्रतिशत पानी गांव के भूमिहीन परिवारों के लिए नियत किया जाएगा। इसी समझौते के चलते ही सार्वजनिक खण्ड सिंचाई में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कार्यक्रम विकसित किया गया। मुख्य सवाल यह था कि ज़मीन के अभाव में भूमिहीन इस पानी का कहां उपयोग करेंगे? इसके लिए तीन सुझाव दिए गये। पहला— ज़मींदारों के खेत में मिलकर काम किया जाए तथा पानी के अपने हिस्से के बदले भूमिहीन को फसल का हिस्सा दिया जाए। दूसरा— भूमिहीन पानी के बदले नकद मुआवज़ा ले लें। तीसरा— भूमिहीन सामुदायिक या निजी बंजर ज़मीन किराए पर लेकर अपना पानी उपयोग करके उस पर खेती करने का प्रयास करें।

किन्हीं कारणों से पहले व दूसरे सुझावों पर अमल नहीं किया जा सका। तीसरे सुझाव को लेकर भी भूमिहीन पुरुषों में हिचक थी क्योंकि उन्हें इसमें कोई फायदा नज़र

नहीं आ रहा था। पर औरतें इसे अपने ईंधन व चारे की ज़रूरत पूरा करने के साधन और कुछ रोज़गार पाने के मौके के रूप में देख रही थीं। तब से यह एक महिला कार्यक्रम बन गया।

पर अपने हिस्से का पानी किस ज़मीन पर इस्तेमाल किया जाए—यह सवाल औरतों के सामने ज्यों का त्यों खड़ा था। काफी मनुहार और आश्वासन दिलाने के बाद छः ज़मींदारों ने अपनी दस हेक्टेयर बंजर भूमि भूमिहीन व महिला समूह को लिखित अनुबंध के माध्यम से किराये पर दे दी। अब ज़मीन के उपयोग को लेकर काफी सुझाव थे। पुरुष इस पर अंगूर जैसी मुनाफे वाली नकदी फसल उगाना चाहते थे परन्तु शुरुआत में लगने वाली पूंजी, बाज़ार के उतार-चढ़ाव, उच्च स्तरीय कौशल आदि के कारण ऐसा करना आसान नहीं था। पुरुषों ने इसमें कोई रुचि नहीं दिखाई परन्तु औरतों ने इस पर पेड़ लगाकर अपनी ईंधन व चारे की कमी पूरा करने का मन बना लिया। उन्होंने यह भी सोच लिया था कि दस वर्ष के बाद इस ज़मीन पर लगे पेड़ों की बारी-बारी कटाई करने से उन्हें नकद आमदनी भी होने लगेगी। औरतों ने खुद को एक पंजीकृत क्लैक्टिव का भी रूप देकर कानूनी वैधता हासिल कर ली। इस क्लैक्टिव को *पर्यायी विकास संस्था* को नाम दिया गया और इसके सदस्य तेरह भूमिहीन परिवार थे।

औरतों ने एक छोटे से ज़मीन के टुकड़े पर गहन खेती भी करने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने 'प्रयोग परिवार' नाम के अनौपचारिक प्रयोगात्मक किसान समूह से मदद ली जो 'लीसा' यानी बाहरी निवेश वाली सतत तकनीकों की खेती का प्रचार कर रहे थे।

एक अन्य मुद्दा जो इस दौरान उभर कर आया वह फसल की हिस्सेदारी और ज़मींदारों को अपनी ज़मीन के एवज़ में मिलने वाले फायदे से जुड़ा था। अक्सर ज़मीन व पानी पर नियंत्रण होने के कारण ज़मींदार अधिक प्रभावशाली रहते थे परन्तु अब पानी पर मिल्कियत होने के कारण औरतों के समूह के हाथ में ताकत थी। विचार-विमर्श करने के बाद यह निर्णय लिया गया कि फसल को तीन हिस्सों में विभाजित किया जाएगा— 40% जमींदारों का हिस्सा, 40% औरतों का तथा बाकी बचा 20% हिस्सा क्लैक्टिव के पूंजीकोष में जमा किया जाएगा।

औरतों ने एक स्वावलंबन समूह भी शुरू किया जिसने उनकी ऋण संबंधी ज़रूरतों में मदद की। उन्होंने भेड़ पालने की सरकारी स्कीम में भी हिस्सेदारी की। आज महिलाओं के क्लैक्टिव के पास एक लाख कीमत की भेड़ें, एक एकड़ (खरीदी हुई) कृषि भूमि तथा भेड़ों के लिए एक स्थाई तबेला है। महिला क्लैक्टिव धीरे-धीरे अपने ऋण भी चुका रही है।

भूमिहीन औरतों को किराए पर मिली बंजर भूमि खुदावाड़ी विकास क्षेत्र के बाहर पड़ती थी। इस भूमि को बतौर चारागाह इस्तेमाल किया जाता था और पिछले बीस वर्षों से इसका कोई अन्य उपयोग नहीं किया गया था। यह ज़मीन पथरीली, ऊबड़-खाबड़, संसक्त और छोटे टीलों वाली थी। इस भूमि पर कोई पेड़ नहीं था, मिट्टी हट चुकी थी और पूरे साल भर वह सूखी और पपड़ाई रहती थी। ज़मीन एक पहाड़ी के ऊपर ढलान पर स्थित थी। यहां पर पानी पहुंचाना एक बड़ी चुनौती थी। जल सुविधाओं के निर्माण के लिए पाइप डालना, निर्माण सामग्री पहुंचाने में काफी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। इस भूमि पर ऐसी नवीन तकनीक का इस्तेमाल किया जाना था जो इन समस्याओं को कम लागत में हल कर सके जिससे उनके सफल होने पर उसे इसी तरह की समस्या वाले अन्य क्षेत्रों में दोहराया जा सके। औरतों को नई तकनीकें जैसे ए-फ्रेम प्रक्रिया, पॉली-ड्रिप पद्धति, छंटाई, घास-पतवार से ढकना, व बायोमास बढ़त की निगरानी करने के लिए प्रशिक्षण भी दिया गया।

औरतों ने इस प्रशिक्षण के बाद एक तकनीकी सहायक की मदद से पानी की लाईन जाने के लिए विभिन्न जगहों को चिन्हित किया। दस हक्टेयर के इस प्लॉट के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो गया कि टीले के ऊपर पानी को नहर से खींचकर ही लाया जा सकता है। पानी के स्रोत और प्लाट के बीच गहन ऊंचाई होने के कारण तीव्र ऊर्जा वाले पंपिंग ढांचे का उपयोग आवश्यक था। इस ज़मीन के सतत विकास के लिए व्यापक स्तर पर जल व मिट्टी संरक्षण भी ज़रूरी था। *सोपीकॉम संस्थान* के साथ मिलकर औरतों के क्लैक्टिव ने भूमि के लिए सबसे उपयोगी जल-मिट्टी संरक्षण परियोजना तैयार की गई। यह परियोजना रोज़गार के साथ-साथ मिट्टी व पानी के बहाव को भी रोकने में मदद करेगी। पहले वर्ष में एक छोटे से हिस्से पर खेती की गई जिससे पानी की कमी न पड़े।

इसके साथ-साथ गड्ढे व नालियां भी खोदी गईं जिनमें सूखी पत्तियां, ताज़ी हरी पत्तियां, तिनके, जड़ें आदि डालकर उपजाऊ मिट्टी तैयार की गई। भूमि पर ऐसे पौधे उगाए गए जो मिट्टी में नाइट्रोजिन की मात्रा को बढ़ाने में मददगार रहे। एक व्यापक विकास परियोजना के माध्यम से औरतों ने बांध, नहरों व पुश्ते बनाने के लिए जगह निश्चित की गई। औरतों के हर कदम पर इस कार्यक्रम से जुड़ने से यह सुनिश्चित हो गया कि यह कार्यक्रम उनका अपना है और इसको सुचारु रूप से पंद्रह वर्ष तक चलाने की ज़िम्मेदारी भी क्लैक्टिव की है।

सोपीकॉम संस्थान की मदद से औरतों के क्लैक्टिव ने तीन प्रमुख स्तरों पर सफलता हासिल की है। पहला—जल उपयोगकर्त्ता संस्थानों के साथ अनुबंध करके पानी पर अधिकार की स्थापना। दूसरा—कौशल विकास के ज़रिए ज़मीन पर दावेदारी तथा पानी व ज़मीन संसाधनों के सम्पूर्ण इस्तेमाल की क्षमता का विकास। तीसरा—अधिकारों की सुरक्षा के लिए संस्थागत प्रावधान जैसे पानी के इस्तेमाल व भूमि के किराए के लिए कानूनी अनुबंध।

खुदावाड़ी की औरतों के अनुभव यह दर्शाते है कि पानी का अधिकार ज़मीन की मिल्कियत के बिना बेमानी है। गांव के मामलों में औरतों की शिरकत तथा आर्थिक गतिविधियों और सम्पत्ति में उनकी हिस्सेदारी ही सही मायनों में उन्हें अधिकार प्रदान कर सकती है।

सीमा कुलकर्णी *सोपीकॉम संगठन में वरिष्ठ फैलो के पद पर कार्यरत हैं।*

कचरा बीनने वाली लड़कियां

भगवत रावत

आपने अपने शहर में भी
ज़रूर देखी होंगी
ये कचरा बीनने वाली लड़कियां।
मोहल्ले भर के कूड़े के ढेर पर
चौपायों सी चलती-फिरती
कचरे में अपने आप पैदा हो गई
नहीं लगतीं
ये कचरा बीनने वाली लड़कियां?
जगह-जगह फटे
अपने कपड़ों जैसे टाट के बोरे में
भरती हैं वे बीन-बीन कर
हमारे आपके रद्दी किए कागज़ के टुकड़े
टूटे-फूटे टीन और प्लास्टिक के डिब्बे।

जब कोई छपा हुआ फोटू
या साबुत डिब्बा मिल जाता है उन्हें
तो वे रख देती हैं उसे अलग संभालकर
और उस समय तो आप
उन्हें देख नहीं सकते जब वे
कचरे में से न जाने क्या उठाकर
चुपचाप मुंह में रख लेती हैं।
अपने आसपास
घूमते सुअरों के बीच कैसी लगती हैं
ये कचरा बीनने वाली लड़कियां?
यह सवाल
समाजशास्त्र के कोर्स के बाहर का है
और सौन्दर्यशास्त्र उनके लिए
अभी बना नहीं।
हां आजकल कलात्मक फ़ोटोग्राफ़ी के लिए
मसाला ज़रूर हो जाती हैं
ये कचरा बीनने वाली लड़कियां!

अपनी त्वचा पर
कालिख की परतों पर परतें चढ़ातीं
बालों को जटा-जूटों की तरह
फैलाती-चढ़ातीं
बिना शरम-लिहाज़
शरीर को चाहे जहां खुजलातीं
पसीने और पानी के छींटों से बनी
मैल की लकीरों वाले चेहरे पर
पीले दांतों से
न जाने किसको मुंह चिढ़ातीं
आठ-नौ बरस से
बीस-पच्चीस तक की उमर की
पता नहीं कब कैसे
किस कूड़े घर से
अपने पेट में
बच्चे तक उठा ले आती हैं
ये कचरा बीनने वाली लड़कियां।

मर तो चुकी थीं सारी की सारी
चौरासी की गैस में
अब किससे पूछें
कि फिर से कहां से उग आई हैं
ये कचरा बीनने वाली लड़कियां?

किसी रजिस्टर में इनका नाम नहीं लिखा
ढूंढ़ने पर भी इनके बाप का पता नहीं मिलता
इनका कहीं कोई भाई नहीं दिखता
यहां तक कि खुद ही
अपनी मां होती हैं
ये कचरा बीनने वाली लड़कियां।

लेख

लिंग संवेदी शौचालय व महिला सुरक्षा

प्रभा खोसला

शहर अधिक सुरक्षित व रहने योग्य बनेंगे अगर उनका नियोजन व प्रारूप महिलाओं व लड़कियों को ध्यान में रखकर बनाया जाए। यह हम सभी जानते हैं कि स्वच्छ शौचालयों और बेहतर स्वास्थ्य आधारभूत सुविधाएं हर नागरिक का बुनियादी अधिकार हैं। यह भी सच है कि पानी व स्वास्थ्य सुविधाओं पर निवेश, गंदगी, खराब सुविधाओं व संक्रमित पीने के पानी के कारण होने वाले दीर्घकालीन स्वास्थ्य के नुकसान की लागत से कम ही है।

शौचालयों व स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी महिलाओं व लड़कियों के लिए खतरे पैदा करती है। कम रोशनी तथा अनुपयुक्त जगहों पर स्थित सार्वजनिक शौचालयों व खुले मैदानों का इस्तेमाल करते समय महिलाओं को हिंसा का सामना करना पड़ता है। अनेकों महिलाओं के साथ नहाने या शौचालय जाते समय छेड़छाड़ या बलात्कार जैसी घटनाएं घटी हैं। सुरक्षित और आरामदायक माहौल में अपने दैनिक कार्यो जैसे शौच, नहाना, कपड़े धोना न कर पाना लड़कियों को शर्मिंदा व अपने बुनियादी अधिकारों से वंचित करता है।

महिलाओं व लड़कियों को ध्यान में रखकर निर्मित शहरों में सुरक्षा व सम्मान सतत शहरी नियोजन व प्रारूपण का अभिन्न नियम होता है। यह महिलाओं की सुरक्षित, साफ़ व सामर्थ्य योग्य शौच सुविधाएं मुहैया कराता है। महिलाओं व लड़कियों के लिए इन सेवाओं की उपलब्धता युवा लड़कों, पुरुषों, विकलांगों के लिए भी उपयोगी रहेंगी। हम भलीभांति परिचित हैं कि बगीचों, सड़कों, गलियों व मैदानों में पुरुष, खुलेआम पेशाब करते पाए जाते हैं। सार्वजनिक जगहों को शौचालय की तरह उपयोग करने की पुरुषों की यह आदत महिलाओं की आवाजाही और आज़ादी से घूमने-फिरने के हक़ पर अंकुश लगाती है। यह पर्यावरण को अस्वस्थ व गंदा करती है तथा अन्य नागरिकों के साथ-साथ पुरुषों के लिए भी तकलीफ़ें पैदा करती है।

हालांकि यह सच है कि काफी शहरों व कस्बों में सार्वजनिक शौचालय मौजूद हैं पर यह भी सच है कि अधिकांश महिलाएं व लड़कियां गंदगी, अनुपयुक्त जगह पर स्थित होने अथवा खराब प्रशासन और असुरक्षित माहौल के कारण इनका इस्तेमाल नहीं करतीं। अक्सर शौचालय महिलाओं, बुजुर्गों, विकलांग व्यक्तियों व बच्चों के आसान व सुविधाजनक उपयोग को ध्यान में रखकर नहीं बनाए जाते। कुछ शौचालय इतने छोटे होते हैं कि उसमें घूमकर बैठना ही मुश्किल होता है, फिर बच्चों के साथ इस्तेमाल तो दूर की बात है। पर्स, दुपट्टा, शाल टांगने के लिए खूंटी या सहारा लेकर उठने-बैठने के लिए रेलिंग का भी अभाव होता है। सामुदायिक शौचालयों में पानी बाहर से भरकर लाना पड़ता है और अक्सर वहां पर माहवारी के समय कपड़े धोने की सुविधा नहीं होती। निम्न आय इलाकों के सामुदायिक शौचालयों में नहाने व कपड़े धोने की व्यवस्था भी नहीं होती।

उचित शौचालय सुविधाओं का अभाव महिलाओं व लड़कियों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। हम अक्सर महिलाओं व लड़कियों पर लगाए जाने वाले सामाजिक नियंत्रणों और मनाहियों को इससे जोड़कर नहीं देखते। उदाहरण के लिए दिल्ली में बवाना व भल्स्वा पुनर्वास बस्तियों में *जागोरी* व *एक्शन इंडिया* ने पिछले दो वर्षों में नगरपालिका द्वारा मुहैया सेवाओं, आधारभूत सुविधाओं, व महिलाओं की सुरक्षा की समीक्षा करने पर

ढाका में महिला शौचालय का निर्माण

पाया कि पानी भरने व शौचालय इस्तेमाल करने की कतार में लड़कियों को सुबह इतना अधिक समय लग जाता है कि उन्हें स्कूल भूखा ही जाना पड़ता है।

भल्स्वा की लड़कियों की शिकायत है कि स्कूल में शौचालय सुविधा नहीं है। उन्हें शौच के लिए वापस घर आना पड़ता है जिससे पढ़ाई का नुकसान होता है। बवाना के स्कूल में शिक्षकों के लिए शौचालय है परन्तु छात्राएं उनका उपयोग नहीं कर सकतीं। आठ सौ से भी अधिक लड़कियों के लिए केवल दो शौचालय हैं। लड़के व लड़कियां इनका उपयोग अलग-अलग शिफ्ट में करते है। गंदे, बदबूदार इन शौचालयों में माहवारी का कपड़ा धोने या पैड फेंकने का कोई इंतज़ाम नहीं है जिसके कारण लड़कियां माहवारी होने पर स्कूल से छुट्टी लेती हैं।

इसके साथ ही बवाना में कई माता-पिता ने बताया कि वे अपनी बेटियों की जल्दी शादी करना चाहते हैं क्योंकि उपयुक्त मूल सुविधाओं के अभाव में सुरक्षा एक चिंताजनक मुद्दा है। उन्हें लड़कियों का रात को खुले मैदान में जाना उचित नहीं लगता और बलात्कार का डर हमेशा बना रहता है। सुरक्षित और उपयुक्त शौचालय सुविधाओं का अभाव लड़कियों के अधिकारों का हनन करता है और जीवन में चयन के मौकों को भी सीमित करता है। दोनों इलाकों में महिलाएं व लड़कियां शाम के समय कम खाती हैं जिससे दैनिक क्रियाओं को नियंत्रण में रखा जा सके।

उपर्युक्त सभी तर्को से यह स्पष्ट उभर कर आता है कि लिंग संवेदी शौचालय व सार्वजनिक सामुदायिक शौचालय ब्लॉक शहरी जीवन को अधिक आरामदायक बनाकर सभी नागरिकों को काम व आराम के समान मौकों का लाभ उठाने में सहायक होंगे।

महिलाओं व लड़कियों के लिए लिंग संवेदी शौचालयों का निर्माण करते समय निम्न दो मुख्य बिन्दुओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। पहला—उपयोग करने वाली महिलाओं, लड़कियों, युवा लड़कों, बुजुर्गों, विकलांगों के साथ निर्माण में लगने वाले समान, बैठने की सुविधा व अन्य व्यवस्थाओं, माहवारी, स्वच्छता सुविधाओं, शौचालयों के प्रारूप (पेशाब/मल का निकास, साफ़-सफ़ाई, प्रबंधन, कपड़े टांगने की सुविधा आदि) पर सुझाव आमंत्रित किए जाने चाहिए। जहां संभव हो सके स्नानघर और कपड़े धोने-सुखाने की सुविधा भी मुहैया कराई जानी चाहिए। दूसरा—शौचालय निर्माण में सततता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। जहां तक हो सके पारम्परिक ज्ञान, जल-सफ़ाई सेवा में पर्यावरण और पारिस्थितिक तंत्र व उपयुक्त तकनीकों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। एक और तरीका है जगह के भौगोलिक व सांस्कृतिक संदर्भ को मद्देनज़र रखते हुए शुष्क शौचालयों का निर्माण।

लिंग संवेदी शौचालय के प्रारूपण में निम्न प्रमुख बातों को शामिल किया जाना चाहिए:

- ऐसी जगह का चुनाव जिसमें सुरक्षा व एकान्त दोनों हो।
- शौचालय में अंदर व बाहर उचित जगह का प्रावधान तथा रोशनी व हवा के आवागमन के लिए रोशनदान, झिर्री, झरोखे आदि।
- खुले दरवाज़े व उपयुक्त लम्बाई-चौड़ाई जिसमें मोटे स्त्री-पुरुष व गर्भवती महिलाएं व छोटे बच्चे आसानी से प्रवेश कर सकें। ऊंची दीवारें व ज़मीन तक पहुंचने वाले दरवाज़े जिससे गोपनीयता रखी जा सके। दरवाज़ों को अंदर से बंद करने के लिए कुंडी व ताला।
- शौचालय के भीतर नल व बेसिन।
- विकलांगों, बुजुर्ग/बीमार महिलाओं व बच्चों को चढ़ने के लिए सुविधाजनक चबूतरे।
- चबूतरे व फर्श पर आसानी से साफ़ होने वाली निर्माण सामग्री का उपयोग। चबूतरे का सही ढलान जिससे सफ़ाई के बाद पानी पूरी तरह निकाला जा सके।
- बैठने वाले शौचालय में हाथ से पकड़ने वाली रेलिंग बुजुर्गों व गर्भवती महिलाओं के लिए खास उपयोगी रहेगी।
- बच्चों के लिए विशेष तौर पर बैठने वाले शौचालयों का निर्माण।

एक अन्य बात जिस पर ध्यान देना ज़रूरी है वह है—शौचालय ब्लॉक। ब्लॉक का दरवाज़ा तथा ब्लॉक दोनों

को आराम, उपयोगिता व सुरक्षा के अनुसार बनाया जाना चाहिए जहां महिलाएं व लड़कियां शारीरिक व यौन उत्पीड़न से सुरक्षित रहें। स्कूल व रिहाइशी दोनों इलाकों पर स्थित शौचालय ब्लॉकों के निर्माण के समय लड़कों व लड़कियों दोनों से बात की जानी चाहिए कि उनके लिए क्या अधिक सुविधाजनक रहेगा। खासकर स्कूलों में लड़कियों के लिए अलग शौचालय ब्लॉक के निर्माण से उन्हें ज़्यादा सुरक्षा का एहसास होता है। शौचालय ब्लॉक के निर्माण में निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना उचित रहेगाः

- चारों ओर से बंद शौचालय व ऊंची दीवारें ब्लॉक जिससे गोपनीयता बनी रहे।
- ब्लॉक के भीतर उपयुक्त जगह जिससे महिलाएं/लड़कियां खड़ी रह सकें।
- अलग-अलग ऊंचाई/लम्बाई वाले नल/बेसिन ।
- कूड़ेदान व महावारी के गंदे कपड़े/पैड फेंकने की उचित व्यवस्था।
- स्नानघर सुविधाएं (सुरक्षा, निकास, हवा, लम्बाई चौड़ाई, ऊंचाई का विशेष ध्यान)।
- कपड़े धोने के लिए सिमेंट के टब। पुरुष शौचालयों में भी कपड़े धोने की व्यवस्था।
- पानी के निकास के लिए उचित ढलान/नाली।

इन सभी बातों को ध्यान में रखकर हम महिलाओं व लड़कियों के लिए सुरक्षित आरामदायक मूलभूत सुविधाओं की व्यवस्था कर सकते हैं जिससे वे बतौर नागरिक अपने अधिकारों का पूर्ण व सम्मानजनक उपयोग कर सकें।

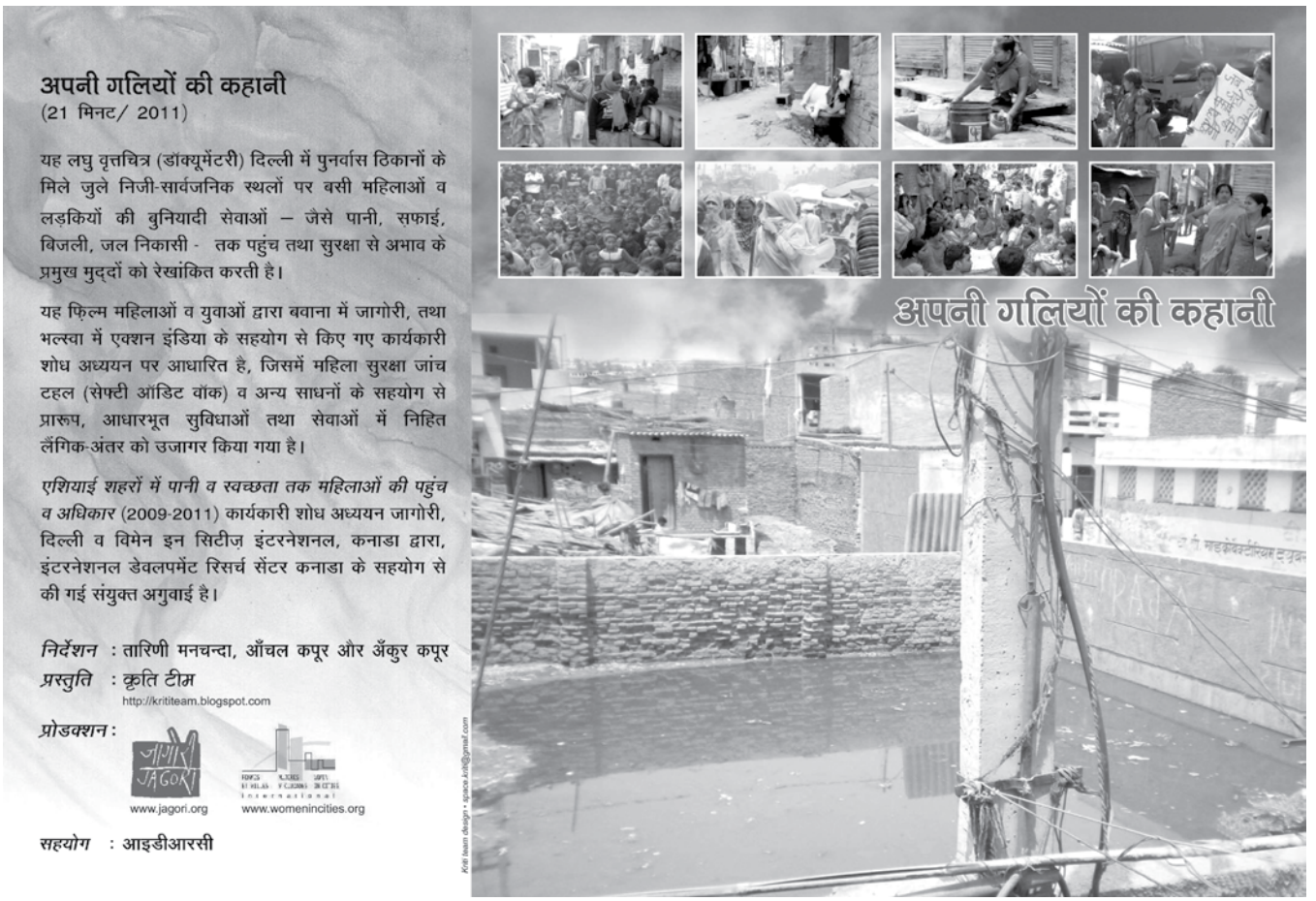

प्रतियां मंगवाने के लिए संपर्क करें:
महाबीर सिंह, जागोरी
दूरभाषः 011-26691219/20 • distribution@jagori.org

फ़ोटो: कल्पना शर्मा

नई बस्ती की एक झलक

नए विधायकों के लिए सबक

कल्पना शर्मा

पंद्रहवीं लोक सभा का चुनाव जीतने वाली पंद्रह महिला सदस्याओं में भिवानी-महेंद्रगढ़ हरियाणा की श्रुति चौधरी भी हैं। हमारा विचार है कि उन्हें अपने निर्वाचन क्षेत्र के नारनौल कस्बे की नई बस्ती में जाना चाहिए व इस झुग्गी-झोपड़ीनुमा बस्ती की औरतों से बातचीत करनी चाहिए। अगर श्रुति इन औरतों से पूछें कि उनके निर्वाचन क्षेत्र से जीतने वाले लोक सभा सदस्य के लिए सबसे अहम मसला क्या होना चाहिए तो बेहिचक जवाब मिलेगा—पानी और सफ़ाई।

एक ओर नई सरकार अपनी राजनीतिक मांगों के मोलभाव में व्यस्त है और मीडिया राजनैतिक गठबंधनों के बारे में अटकलें लगा रहा है—तो दूसरी ओर भारत के करोड़ों लोग बिना पानी के एक और वर्ष बिता रहे हैं। भोपाल में पानी को लेकर दंगे हो चुके हैं। गुजरात के कुछ शहरों में हफ्ते में एक बार एक घंटे पानी आता है। शहरी भारत के नागरिक पानी के टैंकरों के सहारे गर्मियां गुज़ार रहे है। गांवों में कुएं सूख चले हैं क्योंकि उनका पानी उद्योगों शहरों व कस्बों को सप्लाई किया जा रहा है।

कांग्रेस पार्टी का विश्वास है कि विकास के मूल मंत्र उन्हें चुनाव जीता देंगे। पर क्या अपनी दूसरी पारी में भी सरकार इन दो परस्पर आश्रित मुद्दों को जनता के समक्ष परोस देगी? कैसे? अच्छी से अच्छी स्कीमें अच्छे प्रशासन के अभाव में मुंह के बल गिर जाती हैं। अगर प्रशासन अच्छा भी हो तो मूलभूत सुविधाओं मसलन पानी व स्वच्छता में निवेश न होने के कारण कुछ भी नहीं बदलता। नारनौल इस तथ्य का सटीक उदाहरण है। साठ हज़ार आबादी वाला यह कस्बा दिल्ली-जयपुर हाईवे पर पड़ता है और उत्तर भारत का एक गुमनाम सा भाग है।

मैंने नई बस्ती की महिलाओं के साथ आम चुनावों से पहले एक सुबह मुलाकात की। एक घर के आंगन में

रंग-बिरंगे दुपट्टों से अपना सिर ढके तकरीबन हर उम्र की औरत ने प्रशासन व विकास पर पुरज़ोर तरीके से अपने विचार मेरे सामने रखे।

उनकी सबसे बड़ी समस्या पानी थी। उन्होंने ज़मीन से झांकते पाइप मुझे दिखाए जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि वहां पाइप के ज़रिए पानी सप्लाई करने की योजना थी। पर यह योजना बस योजना ही रह गई। पानी नहीं आया, पाइप सूखे पड़े रहे और सूखे पाइप में नल लगाने का कोई फायदा नहीं था। लिहाज़ा औरतें उस सपने को साकार होने के प्रमाण के साथ जीती रहीं जो शायद हो कभी पूरा होगा। पर कागज़ी तौर पर उन्हें पानी मिल रहा है। वे पचास रुपये माहवार उस पानी के लिए भुगतान करती हैं जो उन्हें कभी मिलता ही नहीं है। यही है योजना का कागज़ी स्वरूप।

'हमने दो साल पहले बहुत धरने दिए। सड़के जाम कीं, ज़िला कलैक्टर के दफ्तर जाकर तीन घंटे बैठे रहे। सब आए। दो दिन तक पानी भी आया और फिर बंद हो गया। पहली बार ऐसा हुआ था कि औरतों की आवाज़ों के शोर में पुरुषों की आवाज़ें दब गई थीं। पर इसके बावजूद कुछ नहीं बदला।'

तो फिर वे पानी कहां से लाती हैं? नगरपालिका नई बस्ती से कुछ दूर स्थित टंकियों में पानी की सप्लाई करती है। लिखित कार्यवाही के अनुसार यह सप्लाई हफ्ते में तीन बार होनी चाहिए। पर हकीकत में पानी सप्ताह में एक ही बार आता है। औरतें अपनी बारी का इंतज़ार करती हैं और जितना पानी वे भरकर ले जा सकती है उतना ले जाती हैं। इक्के-दुक्के चांपाकल भी लगे हैं। पर जितना पानी वे भर पाती हैं वह उनकी ज़रूरत के हिसाब से काफी कम है।

"पुरुष काम पर जा सकते हैं। सभी तकलीफ़ें औरतों को सहनी पड़ती हैं। हमें पानी भरना पड़ता है। औरतें सशक्त होती हैं क्योंकि उनको सब कुछ सहन करना पड़ता है," पूर्व निगम पार्षद बिरना देवी कहती हैं।

नई बस्ती की औरतों को जब आप पानी इस्तेमाल करते देखेंगी तब जानेंगी कि पानी को वे कैसे बचाकर चलती हैं। हर एक बूंद को बार-बार इस्तेमाल किया जाता है। कपड़े धोने पर निकाला साबुन का पानी बर्तन साफ़ करने के काम में लिया जाता है। और गंदे पानी को घरों के बाहर नालियां साफ़ रखने के लिए उपयोग किया जाता है क्योंकि पानी के अभाव के साथ-साथ नई बस्ती में सीवर व्यवस्था भी नहीं है। पर आश्चर्य की बात यह है कि इतनी तंगी और परेशानी के बावजूद यह इलाका साफ़-सुथरा है।

तो हमारे नव-निर्वाचित विधायकों के ये महिलाएं कौन सा सबक सिखा सकती हैं? सबक है औरतों से बात करो, उन्हें सुनो, उनकी बुनियादी समस्याओं के बारे में पूछो और उनके तलाशे गये उपायों और समाधान से सीखो।

कल्पना शर्मा *एक स्वायत्त पत्रकार हैं।*
वे विकास व महिला संबंधी मुद्दों पर लिखती हैं।

देश बरबाद किया

कमला भसीन

खुद को आबाद किया देश बरबाद किया
सत्ता पाने के लिये खूब खाने के लिये

खूब इरादे किये, कितने वादे किये
सब्ज़ बागों के सपने दिखाते रहे
दूर ग़रीबी होगी, सबको रोजी होगी
ऐसे नारों से हमको बहकाते रहे
पैंसठ सालों में सही अब तो हम जान गये
सत्ता पाने के लिये ...

जनता फ़ाके करे, जनता भूखी मरे
कॉमनवेल्थ मनाने का शौक़ तुम्हें
लाखों बेघर रहें, पड़े सड़कों पर रहें
ऊंचे होटल बनाने का शौक़ तुम्हें
चाहे कुछ देर से ही अब तो हम जान गये
सत्ता पाने के लिये...

घरों में रोशनी नहीं, साफ़ पानी नहीं
बातें बढ़िया कम्प्यूटर की करते हो तुम
यहां पे स्कूल नहीं, पक्की सड़कें नहीं
सफ़र इक्कीसवीं सदी का करते हो तुम
चेते हैं देर से पर अब तो हम चेत गये
सत्ता पाने के लिये...

("रमईया वक्ता वईया" की धुन पर)

फ़ोटो: स्पार्क, मुंबई

शौचालय पास दिखाती हुई महिला

एक सराहनीय पहल

सामुदायिक शौचालय ब्लॉक

मरिया व इन्दू

स्पार्क **-** *(सोसाइटी फॉर द प्रमोशन ऑफ़ एरिया रिसोर्स सेंटर्स)* मुंबई की एक गैर सरकारी संस्था है जो घरों, मोहल्लों और रोज़गार के अवसरों में सुधार लाने के लिए समुदायों के साथ काम करती है। *स्पार्क, राष्ट्रीय झोंपड़पट्टीवासी संगठन* और *महिला मिलन* के साथ गठबंधन के रूप में काम करती है। *राष्ट्रीय झोंपड़पट्टीवासी संगठन* एक समुदाय आधारित संस्था है जिसका गरीबों को विस्थापन के विरूद्ध संगठित करने, अपने मुद्दों को मुखरित करने और समस्याओं का हल ढूंढ़ने के साथ-साथ शहरी गरीबों के लिए पानी और स्वच्छता जैसी आधारभूत सुविधाएं मुहैया कराने की ओर प्रयास करने का इतिहास है। *महिला मिलन* गरीब महिलाओं का एक विकेन्द्रित तंत्र है जहां महिलाएं अपने-अपने समुदायों में बचत और ऋण संबंधित गतिविधियां संभालती हैं। यह महिला गुटों के उस सामर्थ्य की पहचान करता है जिसके द्वारा वे समाज संबंधों में परिवर्तन लाकर गरीब परिवारों के जीवन में सुधार ला सकती हैं।

समुदाय लिंगभेद के प्रति संवेदनशीता

स्पार्क, राष्ट्रीय झोंपड़पट्टीवासी संगठन एवं *महिला मिलन* के गठबंधन का स्पष्ट केंन्द्र बिंदु है: गरीबों में सबसे गरीब और उनमें भी विशेष रूप से महिलाएं घर और समुदाय

संबंधित सभी मुद्दों के केन्द्र में तो हैं लेकिन उनका योगदान अधिकतर अप्रत्यक्ष व अनदेखा कर दिया जाता है। अर्थपूर्ण परिवर्तन तब होता है जब इस योगदान को प्रत्यक्ष बनाकर महिलाओं को और अधिक औपचारिक हस्तक्षेप में भाग लेने के लिए सामर्थ्य, समर्थन और संसाधन दिए जाएं। यदि यह जागरूकता से नहीं किया जाए तो महिलाएं अपनी भूमिका त्याग देती हैं और पुरुष नेतृत्व हासिल कर लेते हैं। महिलाओं को शामिल करना एक साधन भी है क्योंकि इसके द्वारा निरंतरता, व्यावहारिक समाधान और जन आंदोलनों में समानता का आश्वासन मिलता है। सामूहिक सहभागिता द्वारा हस्तक्षेप में महिलाओं की उपेक्षा करना कठिन है। यह उस परम्परागत समुदाय संगठन के विपरीत है जहां हस्तक्षेप युक्तियां एकल पुरुष नेता के इर्द-गिर्द बनती हैं।

शौच व्यवस्था

भारत में झोपड़पट्टी शौच व्यवस्था परम्परागत रूप में नगरपालिकाओं या अन्य सार्वजनिक निकायों द्वारा की जाती है और समुदाय की सहभागिता इसमें यदा-कदा ही हुई है। शौचालयों की जगह, उनके डिज़ाइन, भौतिक निर्माण की संस्थाओं और रखरखाव के मुद्दों पर नगरपालिका अधिकारी निर्णय लेते हैं और संबंधित समुदायों से कभी राय नहीं ली जाती। प्रक्रिया इंजीनियरों और ठेकेदारों द्वारा तय की जाती है और इनका रखरखाव नगरपालिका स्वच्छता कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। नगरपालिका स्वच्छता कर्मचारी अपने कर्तव्यों से जी चुराने के लिए बदनाम है और नौकरशाही तंत्र इन्हें व्यवस्थित करने में असमर्थ है। इसके अलावा वे स्थानीय समुदायों के प्रति अनुग्रहित न होने के कारण उनके प्रति उत्तरदायी नहीं होते। समुदाय की भी इस प्रक्रिया में कोई भागीदारी नहीं होती और इसलिए समुदाय अपने लिए बनायी गयी 'सम्पत्ति' के प्रति कोई स्वामित्व का भाव नहीं रखता।

परिणाम सबके सामने हैं— ये शौचालय एक या दो वर्षों में निष्क्रिय हो जाते हैं। अतः हमारे अधिकांश शहरों में बहुत कम चालू शौचालय हैं और लोगों को जबरन खुले में शौच करना पड़ता है। रेलवे पटरियों और शहरों के अन्य सार्वजनिक इलाकों में 'उघड़े पिछवाड़े' दिखना शहर का एक साधारण अनुभव हो गया है। महिलाओं को इस प्राकृतिक कार्य के लिए अंधेरा होने का इंतज़ार करना पड़ता है। बच्चे कहीं भी बैठ जाते हैं और मल सभी जगह फैल जाता है। इन अस्वच्छ परिस्थितियों और पर्यावरण जोखिमों के कारण गरीबों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है।

इस स्थिति को सुधारने के लिए परोपकारी और अन्य संस्थाएं 'भुगतान और उपयोग' के शौचालयों का निर्माण करती हैं। यह व्यवस्था रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों आदि जैसे भीड़ वाले इलाकों में अच्छी चलती हैं। लेकिन झोपड़पट्टियों के लिए इसकी व्यावहारिकता में शक है क्योंकि शौचालय के प्रयोग का खर्च काफ़ी ज्यादा होता है— साधारणतया दो रुपये प्रति व्यक्ति प्रति उपयोग। सरकारी प्राधिकरणों और स्थानीय निकायों द्वारा बनाए गए शौचालय की तरह इन 'भुगतान और उपयोग' शौचालयों में समुदाय की भागीदारी का प्रश्न ही नहीं उठता।

महिला मिलन ने शौचालयों के गंदे होने के कारणों का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि बड़े शौचालय काफी दूर-दूर थे और शौचालयों और घरों का अनुपात 1-4 से अधिक होने के कारण यह सेवा निराशजानक रूप से अपर्याप्त है। शौचालयों की व्यवस्था और रखरखाव उचित नहीं है। क्योंकि निर्माण में घटिया माल का इस्तेमाल किया गया था वे सदैव खराब और निष्क्रिय रहते थे। शौचालयों के लिए बच्चों और वयस्कों में होड़ होती थी और हमेशा बच्चों को भगा दिया जाता था। बच्चे बाहर ही बैठ जाते थे जिससे गंदगी फैलती थी। शौचालयों के डिज़ाइन बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं थे।

नवनिर्मित शौचालय ब्लॉक

फ़ोटो: स्पार्क, मुंबई

विकल्प सुझाते समय महिलाएं बहुत स्पष्ट थीं कि उन्हें सामुदायिक शौचालय व्यवस्था चाहिए। इसके लिए उन्होंने कुछ कारण बताए— पहला, यदि व्यक्तिगत शौचालय बनाए जाएं तो प्रत्येक इकाई को मुख्य मलप्रवाह तंत्र से जोड़ने का खर्च काफ़ी ज़्यादा पड़ता है। दूसरा, घर छोटे-छोटे होते है और पानी की आपूर्ति अपर्याप्त जिससे शौचालय साफ़ रखना कठिन है और रसोई के पास होने के कारण स्वास्थ्य समस्याएं होने का डर है।

गठबंधन ने ब्लॉक शौचालय परियोजना निर्माण द्वारा न केवल बेहतर स्वच्छता प्राप्त करने बल्कि समुदाय को संगठित करने का भी प्रयास किया। समुदाय शौचालय ब्लॉकों का प्रारम्भ में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने विरोध किया जबकि व्यक्तिगत शौचालयों में कठिनाइयों की पहचान की जा चुकी थी। परन्तु महिला झोपड़पट्टीवासियों पर पुणे शौचालय परियोजना का प्रभाव काफी अच्छा रहा है।

1999-2000 में लगभग 3500 शौच सीटों के 220 शौचालय ब्लॉकों का गैर सरकारी संगठनों द्वारा निर्माण करने का निर्णय लिया गया। समाचार पत्रों में शौचालय निर्माण के लिए बोली लगाने के लिए गैर सरकारी संगठनों का आह्वाहन किया गया। उनसे अपेक्षा थी कि वे नगरपालिका द्वारा अनुमानित लागत से कम कीमत लगायेंगे। समुदाय और संगठन को यह गारंटी भी देनी थी कि अगले 30 वर्षों तक शौचालयों का रखरखाव समुदायिक योगदान द्वारा किया जाएगा। कार्यक्रम के प्रथम चरण के कार्यान्वयन के लिए आठ गैर सरकारी संगठनों का चयन किया गया। इनमें से एक *स्पार्क* भी थी और *महिला मिलन* ने निर्माण करने का बीड़ा उठाया था।

पहली प्राथमिकता उन बस्तियों को दी गयी जहां कम से कम जनसंख्या 500 लोगों थी और जहां शौचालय सुविधाएं नहीं थीं। दूसरी प्राथमिकता में वे क्षेत्र थे जहां सुविधाएं मौजूद थीं पर इतनी जीर्ण-शीर्ण की उन्हें तोड़कर पुनर्निर्माण करने की आवश्यकता थी। अंतिम प्राथमिकता उन झोपड़पट्टियों की थी जहां शौचालय थे पर पचास लोगों के लिए एक सीट के नियत अनुपात से कम थे।

काम की प्रगति का निरीक्षण और समस्याओं से निपटने के लिए नगरपालिका आयुक्त ने गैर सरकारी संगठन, समुदाय प्रतिनिधि और संबद्ध नगरपालिका कर्मियों के साथ प्रति सप्ताह मीटिंग की। इन मीटिंगों द्वारा *महिला मिलन* का आत्मविश्वास बढ़ा और जैसे-जैसे उन्हें काम का अनुभव हुआ वे अधिक भरोसे से चर्चाओं में भाग लेने लगीं।

पुणे में इस कार्यक्रम के दो चरणों में 2000 शौच सीटें और बच्चों की 500 से अधिक सीटों वाले कुल 114 शौचालय ब्लॉकों का निर्माण किया गया है। इससे मिलता-जुलता कार्यक्रम बृहन्मुंबई नगरपालिका ने वर्ल्ड बैंक द्वारा फंड की गई *मुंबई सीवरेज परियोजना एक एवं ग्यारह* में चलाया जिसमें 5135 सीट वाले 251 शौचालयों का निर्माण किया गया। इसी प्रकार के प्रयोग वाइजैग और तिरपुर में किए गए हैं। इस तरह से निर्मित समुदाय शौचालय ब्लॉकों द्वारा कुल एक लाख से अधिक लोग लाभान्वित हुए हैं। इस काम ने भारत सरकार का ध्यान भी आकर्षित किया है जिसके कारण एक राष्ट्रीय स्वच्छता नीति योजनाबद्व की गई है। इस नीति के तहत शहरी स्वच्छता योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए धनराशि उपलब्ध कराई जाती है।

निष्कर्ष

इस कार्यक्रम में महिलाओं का सशक्त होना एक मिसाल है। परिवार और घर के निजी दायरे से चलकर मंडी और समुदाय तक की यात्रा इन अनपढ़ बस्तीवासी महिलाओं के लिए आसान नहीं है। हर स्तर पर नगरपालिका अधिकारियों के साथ बात-चीत और विचार-विमर्श ने इन महिलाओं को और अधिक सक्षम बनाया है। झोपड़पट्टी में रहने वाली महिलाओं के लिए निर्वाचित प्रतिनिधियों को उत्तरदायी बनाने की प्रक्रिया भविष्य के लिए अच्छा चिन्ह है क्योंकि अच्छे प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पहलू है सत्ताधारियों का गरीबों के प्रति उत्तरदायी होना।

इसके अलावा गरीब कितने ही संगठित क्यों न हों, अपने लिए वे बाज़ार से या राज्य से आधारभूत सुविधाएं हासिल नहीं कर पाते। सफलता के लिए सभी पक्षधरों को पारस्परिक लाभदायक संबंध बनाकर एक साथ काम करना होगा। पुणे में यह एकजुटता देखने को मिली है जिससे अन्य शहर भी प्रेरणा ले सकते हैं।

साभारः स्पार्क, महिला मिलन, राष्ट्रीय झोपड़पट्टीवासी संगठन

संवाद

युवाओं की मांग-एक स्वच्छ पर्यावरण

अदिति बिश्नोई

'देखा न आपने बाहर क्या हाल है?' दिल्ली के बाहरी क्षेत्र में पुनर्वास बस्ती भल्स्वा की पूजा ने हमसे मिलते ही पूछा। पूजा ऊबड़-खाबड़ सड़क, बहते गटर, धंसी-फंसी झुग्गियों तथा कूड़े के अंबार की सड़ाध की ओर इशारा कर रही थी, जहां उसका घर है। 'यहां पर रहना कठिन है। पानी की कमी है, बंद सीवर की समस्या भी है। और गंदे सामुदायिक पाखानों की बात न ही करें तो अच्छा जिन्हें हम इस्तेमाल करने को मजबूर हैं।'

आज पूजा (19) व उसके साथी सोनी (18) फरज़ाना (18) शबनम (17) आकाश व अनेकों युवा दिल्ली की गैर सरकारी संस्था *एक्शन इण्डिया* जो गरीब पलायनकर्त्ता व झुग्गीवासियों के बीच काम करती है, के युवा समूह के सदस्य हैं। पिछले दो सालों से *एक्शन इण्डिया, जागोरी व विमेन इन सिटीज़ इंटरनेशनल* के साथ मिलकर एक परियोजना चला रही है। इस परियोजना के अंतर्गत सार्वजनिक स्तर पर पानी, स्वच्छता, निकास, ठोस कचरा प्रबंधन बिजली आदि तक पहुंच में लैगिंक अंतर तथा इससे महिलाओं की सुरक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों का निरीक्षण किया जा रहा है। इस प्रक्रिया के दौरान समुदाय में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता तथा युवाओं में नेतृत्व क्षमता का विकास भी किया जा रहा है। इन खराब हालातों में जीने की मजबूरी पूजा के सभी साथियों के चेहरों पर साफ़ झलकती है। सोनी बताती है, "भल्स्वा में औरत होना एक श्राप है। हर जगह गंदगी और मुफ़लिसी है। हमारा दिन पानी भरने और रात मच्छर भगाने में गुज़रती है।"

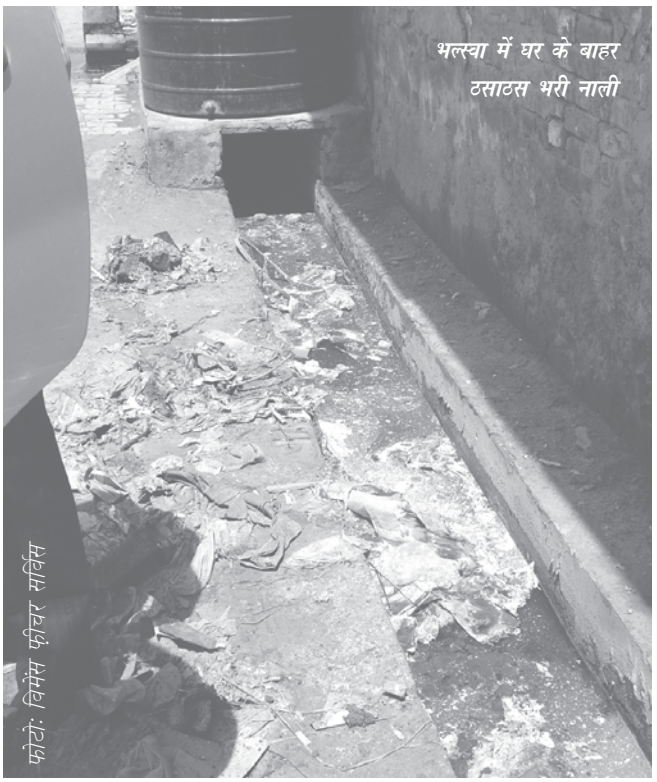

भल्स्वा में घर के बाहर ठसाठस भरी नाली

फोटो: विमेंस फ़ीचर सर्विस

पूजा और सोनी एक आम भल्स्वा निवासी के जीवन की सटीक समीक्षा करती हैं। नौ साल पूर्व यहां रहने वाले 22000 नागरिकों को केन्द्रीय व दक्षिण दिल्ली से विस्थापित करके भल्स्वा में 'फैंक' दिया गया था। यह विस्थापन शहर को 'खूबसूरत' बनाने की प्रक्रिया का हिस्सा था और ज़ाहिर है इस पुनर्वास के लिए कोई नियोजन नहीं किया गया था।

जागोरी परियोजना की सलाहकार, प्रभा खोसला के विचार में 'भल्स्वा एक विस्थापन कैम्प सा प्रतीत होता है। प्रशासन को शहर के बाहर इस नवीन इलाकों में लोगों को बसाने से पहले विकसित करना चाहिए था। किसी को भी इन हालातों में नहीं रहना चाहिए।'

किसी को भी यहां नहीं रहना चाहिए और युवा समूह के सदस्य—बीस लड़कियां और पंद्रह लड़के अब खामोश रहकर सब सहने को तैयार नहीं है। इनमें से काफी स्कूल छोड़ चुके हैं और परिवार की आमदनी बढ़ाने के लिए पार्ट-टाइम नौकरी करते हैं। सक्रियता उनमें कूट-कूट के

भरी है। वे नियमित रूप से मिलते हैं और जानकारी बांटते है जिसका अर्थ है कि वे समुदाय की समस्याओं से बखूबी वाकिफ़ हैं।

पूजा यहां की नालियों की भी हालत बयान करती है। 'यहां हर परिवार में कम से कम छः सदस्य हैं पर नालियां इतना बोझ उठाने में असक्षम है। नाली के पानी का निकास मुख्य सीवर तक न होने से पानी जमा रहता है। कूड़ा डालने से भी नालियां भर जाती है। यहां पर पीलिया जैसी बीमारी आम है। साफ़ पेयजल की भी समस्या है। जो लोग बाहर काम पर जाते हैं वे अपने परिवारों के लिए पीने का पानी भरकर लाते हैं।'

सोनी जोड़ती है, 'दो नई पाइप लाइनें डाली गई हैं परन्तु पानी आने का कोई समय नहीं है। पानी इतना मटमैला है कि उसका रंग चाय जैसा लगता है। हमारे कपड़े इस पानी में धोने से पीले हो जाते हैं। पानी का टैंकर हफ्ते-दस दिन में एक बार आता है और उसका पानी भी काफी गंदा होता है।

परन्तु यह गंदा पानी भी कीमती है। आकाश जो युवा समूह का सदस्य है ने अनुमान लगाया है कि पानी का टैंकर आने पर छीना-झपटी के नतीजतन चालीस प्रतिशत पानी गिर जाता है। अगर सभी लोग कतार में खड़े होकर पानी भरें तो समान बंटवारा भी होगा और सबको पानी मिलेगा। 'हमें व्यवहार में परिवर्तन करने की आवश्यकता है और हम नाटक, पोस्टर और चर्चाओं के ज़रिए ऐसा करने का प्रयास कर रहे हैं।'

अधिकांश घरों में शौचालय नहीं है इसलिए लोग सार्वजनिक शौचालयों का उपयोग करते हैं। हर ब्लॉक में पांच सार्वजनिक शौचालय होने के बावजूद केवल एक ही चालू है। सबसे ज़्यादा तकलीफ़ महिलाओं व लड़कियों को उठानी पड़ती है। शौचालय पानी की कमी के कारण गंदे रहते हैं। कुछ दिनों पहले तक महिला शौचालय में बिजली का बल्ब भी नहीं लगा था। अब बल्ब तो है पर रात में अंधेरा होने के कारण वहां जाने में औरतों को डर लगता है।

और तो और यह सुविधा मुफ्त नहीं है। महिलाएं व लड़कियां उसके उपयोग के लिए एक रुपया व पुरुष दो रुपये देते हैं। शौचालय केवल सुबह 6 से 12 व शाम 4 से 9 के बीच खुले रहते हैं। माहवारी के समय औरतों के पास कोई विकल्प नहीं होता।

भल्स्वा के युवा कार्यकर्ता न सिर्फ़ समस्याओं से अवगत हैं पर इसके निदान भी तलाश रहे हैं। वे राशन कार्ड व सूचना के अधिकार के बारे में जानते हैं और इन विषयों पर सलाह भी देते हैं। समूह ने अनेक चेतना जागृति अभियान भी चलाए हैं जिनमें जल संरक्षण, स्वच्छता जैसे विषय उठाए गए हैं।

इन युवाओं को प्रोत्साहित करने तथा इनके साथ जानकारी बांटने का काफी श्रेय *एक्शन इण्डिया* की सामुदायिक कार्यकर्ता वीरमती व उमा को जाता है। वीरमती कहती है 'ये युवा हमारे काम को आगे ले जाएंगे। हाल ही में हमने एक मोहल्ला सभा आयोजित की थी जिसमें पुलिस, जल व स्वच्छता विभाग के अफ्सर व स्थानीय काउंसिलर आमंत्रित थे। इन युवाओं ने ही ढाई सौ लोगों को इकट्ठा किया और उन्हें तकलीफ़ों के बारे में अफ्सरों को बताने के लिए तैयार किया।'

यह महज़ शुरूआत है उस बदलाव की जिसका तसव्वुर भल्स्वा के युवा देख रहे हैं। कुछ भी आसानी से हासिल नहीं होगा। अब उस बगीचे को ही ले लीजिए जो युवा समूह स्थानीय बच्चों के लिए तैयार करना चाह रहे हैं। इसके लिए एक हस्ताक्षर अभियान चलाया गया। छियासठ दस्तखत जुटाकर एक निश्चित जगह को बगीचे के लिए चुना गया। पर कुछ भी नहीं बदला। धीरे-धीरे वह जगह भी कूड़ा फैंकने के मैदान में तब्दील हो गई है।

पर ये युवा पीछे हटने वाले नहीं हैं। जैसा कि पूजा ने हमें बताया, 'मैं इतनी सारी चीज़ें करना चाहती हूं— जल संरक्षण के विषय में जानकारी बांटना, मासिक धर्म के समय सफ़ाई रखना और पैड को सही जगह फैंकना, घर के कचरे को भी यथास्थान डालना आदि।

सोनी जोड़ती है, 'मुझे बहुत गुस्सा आता है जब मैं पड़ोस के लोगों को इस जगह पर कचरा फैंकते देखती हूं। कई दफ़ा मैंने उन्हें रोका भी है। पर लड़की हूं न इसलिए यह काम थोड़ा मुश्किल है। पर अब मैं युवा समूह के साथ जुड़ गई हूं। अब मेरी आवाज़ बुलंद है। अब मैं हार नहीं मानूंगी।'

अदिति बिश्नोई, *विमेंस फ़ीचर सर्विस, नई दिल्ली में फ़ीचर लेखिका हैं।*

आमने-सामने

मैनुअल स्केवेन्जिंग-कब तक?

नंदिता सेनगुप्ता

सरोज को तसल्ली है कि उसकी उल्टियां अब बंद हो गई हैं। रोज़ाना उल्टियां करना उसके जीवन का हिस्सा बन गया था। वह बारह वर्ष की उम्र से पंजाब के अम्बाला शहर में शुष्क पाखानों से मल निकालने का काम कर रही है। इस काम से जुड़ी वह अपने परिवार की तीसरी पीढ़ी है। वह रोज़ाना दो सौ पाखानों की सफ़ाई करती थी और बिना नागा रोज़ उल्टियां करती थी। बदबू से उसे चक्कर आते थे परन्तु काम करना उसकी मजबूरी थी। आज सरोज के चेहरे पर मुस्कान है जबकि आंखें आज भी उन दिनों के मंज़र को यदा-कदा सामने ले आती हैं। पिछले साल सरोज को इस काम से निजात मिल गई है पर 'उस ज़िदंगी' की यादों ने आज भी उसका पीछा नहीं छोड़ा है। अब वह तीन घरों में घरेलू कामगार का काम करती है। पूछने पर कि क्या अब जीवन में सब कुछ ठीक है वह जवाब देती है—'अभी और बहुत हैं जिनको इस काम से मुक्ति दिलाने में मदद की ज़रूरत है।'

हाथों से मैला साफ़ करने या मैनुअल स्केवेन्जिंग की प्रथा के उन्मूलन की अंतिम तारीख भी छः महीने पहले निकल गई है। एक बार फिर भारत ने इसको भुला दिया है। 1993 में इस प्रथा को कानूनन असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था परन्तु यह आज भी इस देश के कई हिस्सों में दिखाई पड़ती है। राजधानी दिल्ली में भी मौजपुर या नन्दनगरी के दूर दराज़ इलाकों में हाथों से मल की सफ़ाई का काम किया जाता है।

ऐसा नहीं है कि बदलाव लाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किए गए हैं। हरिद्वार में मैनुअल स्केवेन्जिंग कर्मचारियों में अस्सी प्रतिशत महिलाएं हैं जिन्होंने अपनी टोकरियां जलाकर प्रतीकात्मक विरोध का प्रदर्शन किया है। अन्य क्षेत्रों में उन्होंने धरना, जुलूस, ज़िला मजिस्ट्रेट के दफ्तर के सामने नारेबाज़ी, सामुदायिक गोष्ठियां इत्यादि आयोजित की हैं। दिल-दहलाने वाले एक वाकये में कर्नाटक के सावानुर कस्बे में एक कामगार समूह ने मल को अपने शरीर पर लगाकर ज़िला मजिस्ट्रेट के दफ्तर के सामने प्रदर्शन भी किया है।

टोकरी में मल ढोती महिला

'इसके बावजूद सरकारी अफसरों ने इन विरोधों को नज़रअंदाज़ किया'— सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन के एक कार्यकर्ता ने बताया दलितों में सबसे निचली सामाजिक पायदान पर आने वाले डोम, बाल्मिकी व भंगी समूह के अनेक कर्मचारियों को हाथ से मल उठाने, सर पर मैला ढोने व गटर की सफ़ाई करने का काम सौंपा जाता है। जो लोग मैनुअल स्केवेन्जिंग व सफ़ाई के अन्य कामों से जुड़े हैं वे विभिन्न राज्यों के दलित समूहों से आते हैं— पर हर राज्य में वे अपने नाम तथा काम से पहचाने जाते हैं जो उन्हें अपनी जातीय पहचान के कारण मजबूरीवश करना पड़ता है। उदाहरण के लिए दिल्ली में 'भंगी' जिसका शाब्दिक अर्थ 'मायूस आत्मा' है और जो दलितों में सबसे

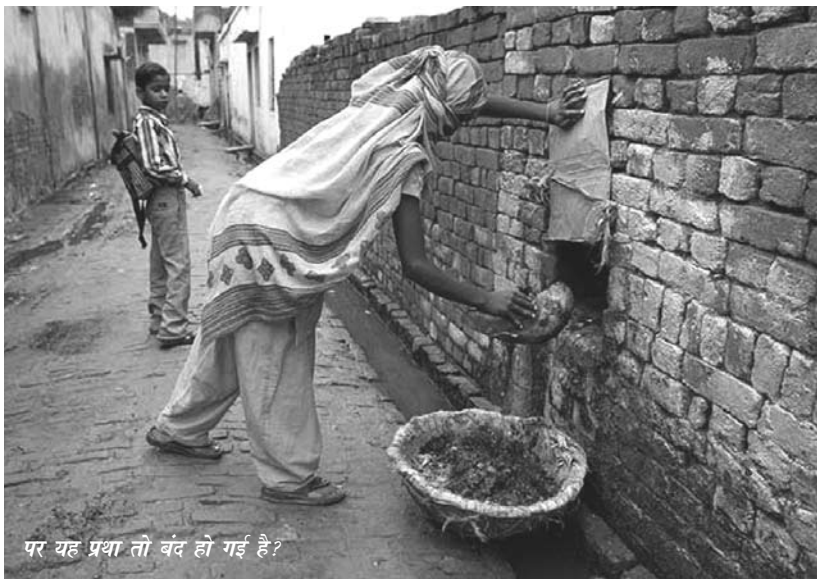

पर यह प्रथा तो बंद हो गई है?

शोषित समूह है को 'पुनर्वास' के बाद भी रेल की पटरी की सफ़ाई का ज़िम्मा दिया जाता है।

भारत में जम्मू-कश्मीर से तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल से राजस्थान तक नंगे हाथों में एक टीन का टुकड़ा लेकर टोकरी में मल इकट्ठा करने की अमानवीय प्रथा आज भी विद्यमान है। दिल्ली सरकार की *सामाजिक सुविधा संगम* के अनुसार शहरी भारत का 37 प्रतिशत मानव मल असुरक्षित तरीकों से फैंक दिया जाता है और साढ़े बारह करोड़ घरों में निकास व्यवस्थाओं का अभाव है। दलित कार्यकर्ता रजनी तिलक बताती हैं कि 'दिल्ली के बाहरी इलाकों में शौचालय तो हैं परन्तु निकास व्यवस्था न होने के कारण मल घर के बाहर एक खुली नाली में धकेल दिया जाता है।'

चेन्नई की एक अन्य सामाजिक कार्यकर्ता जोड़ती हैं कि 'तमिलनाडु राज्य ने तीन वर्ष पूर्व ऐलान किया था कि मैनुअल स्केवेन्जिंग प्रथा खत्म हो चुकी है, पर यह सरासर झूठ है।'

आज हमारे देश में कितने लोग इस अमानवीय काम को करते हैं शायद किसी को नहीं पता। सरकार तो यह भी मानने को तैयार नहीं है कि 'आज के दौर व दिन' में ऐसी प्रथा मौजूद है। 1993 के बाद जब कोई मामला अदालत तक ले जाया जाता है तब सरकार सामाजिक कार्यकर्ताओं पर यह साबित करने की ज़िम्मेदारी डाल देती है कि दलित समूह इस शर्मनाक काम को करने के लिए बाध्य किया जाता है।

स्वतंत्र भारत में मैनुअल स्केवेन्जिंग को असंवैधानिक घोषित करने में छयालीस वर्ष लगे और जनवरी 2011 तक मात्र पांच राज्यों ने इस प्रथा के ख़िलाफ़ कानून पारित किए। *सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ डेवलपिंग सोसाइटी* के योगेन्द्र यादव के अनुसार 'राजनैतिक इच्छा शक्ति का अभाव है। स्वच्छाकार समुदाय एक प्रबल वोट बैंक नहीं है लिहाज़ा किसी का ध्यान इस ओर नहीं जाता। इन शोषित समूहों को दलित समाज में भी अस्पर्श्य माना जाता है'। लेखक-कार्यकर्ता आनंद तेलमुम्बदे बताते है, 'यह रातों-रात खत्म नहीं होगी। यह कोई बेहद बड़ी समस्या नहीं है अगर हम इसे सुलझाना चाहें। पर इस मुद्दे के आसपास फैले जटिल राजनैतिक ताने-बाने के कारण यह समझना मुश्किल है कि असल में हो क्या रहा है।'

पिछले वर्ष राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने इस मुद्दे को इस आधार पर उठाया था कि ज़मीनी सच्चाई व राज्य के दावों ने नए कानून के साथ-साथ कुछ ठोस प्रस्ताव भी दिए हैं। समिति के एक सदस्य हर्ष मंदर के अनुसार 'यह सिर्फ़ स्वच्छता का मुद्दा नहीं है। यह सम्मान और मूलभूत बुनियादी अधिकारों का भी मसला है।'

तमाम प्रयासों के बावजूद इस प्रथा को जड़ से मिटाने में कामयाबी अभी दूर है। 'पिछले वर्ष कार्यकर्ताओं के प्रयासों को भारी झटका लगा जब सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मामलों को वापस उच्च न्यायालय वापस भेज दिया और दोबारा नई कार्यवाही करने की हिदायत दी। पांच महीनों में इक्कीस मामले उच्च न्यायालय भेजे गए थे। अदालत पुनर्वास प्रयासों को कार्यान्वित करने के लिए बिल्कुल सटीक आंकड़े चाहती है,' सर्वोच्च न्यायालय की एक वकील ने बताया।

अभी मंज़िल दूर है और रास्ता लम्बा है। सवाल संख्याओं का नहीं है। अब राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने मार्च 2012 तक इस समस्या को जड़ से मिटाने के निर्देश जारी किए है। पर क्या इससे कोई फ़र्क़ पड़ेगा कहना मुश्किल है?

साभारः टाइम्स ऑफ़ इण्डिया

***नंदिता सेनगुप्ता** टाइम्स ऑफ़ इण्डिया में पत्रकार हैं।*

लेख

बेहतर शहरी बस्तियां: बेहतर स्वास्थ्य

बीजल भट्ट

अहमदाबाद की बस्तियों में रहने वाले बस्तीवासियों के रिहाइशी हालात नई मूलभूत सुविधाओं, रोज़गार के मौकों व सामाजिक सशक्तता के चलते बेहतरी की ओर अग्रसर हैं। इससे लोगों का स्वास्थ्य अच्छा हुआ है और दवाओं पर खर्चों में कमी आई है। स्वास्थ्य के सामाजिक कारकों पर सक्रियता से काम करने से ही दीर्घकालीन परिवर्तन लाए जा सकते हैं।" गुजरात शहर के 'परिवर्तन' कार्यक्रम के पीछे यही सोच विद्यमान है। यह कार्यक्रम सन 1995 में संजयनगर बस्ती में शुरू किया गया था जहां 181 परिवार बसते थे। 'अहमदाबाद परिवर्तन कार्यक्रम' जिसे 'स्लम नेटवर्किंग प्रोजेक्ट' के नाम से भी जाना जाता है, के अंतर्गत यहां मूलभूत सेवाएं जिसमें पानी व स्वच्छता भी शामिल थी, कम लागत पर बस्तीवासियों को मुहैया कराई गईं। अहमदाबाद नगरपालिका के नेतृत्व मे यह परियोजना समुदायों, गैर-सरकारी संगठनों तथा निजी खण्ड संस्थाओं को एक अनोखी भागीदारी निभाने के लिए साथ लाती है।

शहर में 129000 अनौपचारिक बस्तियां व 1380 चॉलें हैं। इनमें तकरीबन तीन लाख परिवार यानी शहर की चालीस प्रतिशत जनसंख्या वास करती है। इनमें से अधिकांश के पास मूल शहरी सेवाओं तक पहुंच न के बराबर है। 'स्लम नेटवर्किंग परियोजना' इस सोच पर आधारित है कि सेवाएं तभी प्रदान की जानी चाहिए जब उनके लिए स्पष्ट मांग की जाए। इसके लिए मुख्य ज़ोर समुदाय की तरफ से आना चाहिए।

यह परियोजना प्रदान की जाने वाली सेवाओं पर वास्तविक 'कीमत' लगाती है जिससे समुदाय निवेश के स्वभाव व लागत का जानकारीयुक्त चयन कर सके। यह परियोजना इसमें शामिल होने वाली हर बस्ती के लिए उपलब्ध है तथा सभी प्रदत्त सेवाएं शहरी सुविधाओं से जुड़ी हैं। 'परिवर्तन' ने अब तक सैंतालीस बस्तियों में पचास हज़ार लोगों के जीवन को सुधारने में मदद की है।

'परिवर्तन' स्थानीय स्तर पर सेवाएं प्रदान करता है और से सेवाएं शहरी स्तर पर मौजूद सुविधाओं के साथ जुड़ जाती हैं। इनमें सड़क व रास्ता बनाना, घरों तक पहुंचने वाली जल सुविधाएं, व्यक्तिगत घरों तक जुड़ने वाली सीवर लाइनें, स्ट्रीट लाईट, ठोस कचरा प्रशासन, शौचालय ब्लॉक तथा आंधी-बारिश में पानी के निकास की सुविधाएं इत्यादि शामिल हैं। इनके लिए वित्तीय मदद समुदाय व शहर दोनों स्तरों पर मुहैया कराई जाती है। इसका अर्थ यह है कि 'परिवर्तन' उन जगहों पर सेवाएं प्रदान करता है जहां मांग अधिक होती है और इन सेवाओं का प्रशासन भी सबसे निचले स्तर पर प्रोत्साहित किया जाता है। इसके मायने यह भी है कि समुदाय तकनीकों, अनुबंध और प्रशासन के इंतज़ामों का चुनाव कर सकते हैं। भागीदारी करने वाले समुदाय सामुदायिक स्तर पर अपनी परियोजनाओं के प्रबंधन के लिए समितियां व सामुदायिक संगठनों का गठन कर सकते हैं।

महिला आवास सेवा ट्रस्ट, एक गैर-सरकारी संगठन है जिसकी शुरूआत 1944 में अहमदाबाद की गरीब स्वरोज़गार करने वाली महिलाओं की विशेष आवासीय सेवाओं की मांग को मद्देनज़र रखकर की गई थी। नगरपालिका के साथ सहभागिता करके महिला आवास सेवा ट्रस्ट ने 'परिवर्तन' के तहत लगभग चालीस परियोजनाएं पूरी कर ली हैं।

'सेवा' की सामाजिक सुरक्षा समन्वयक मीराई चैटर्जी के अनुसार, 'बस्तियों की प्रगति गरीबी घटाने में सहायक होती है। एक गरीब परिवार के लिए उनका घर एक उत्पादक जागीर है। वह उनका कार्यक्षेत्र है। लिहाज़ा घर और उसके माहौल में

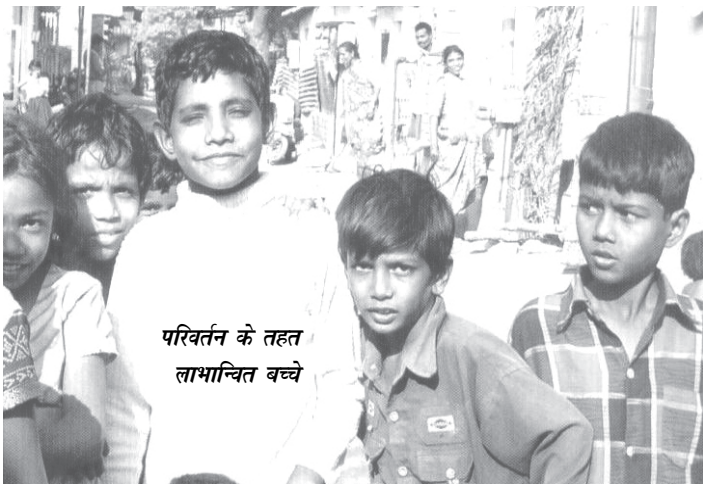

परिवर्तन के तहत लाभान्वित बच्चे

फ़ोटो: गुजरात महिला आवास सेवा ट्रस्ट

बेहतरी व सुरक्षा उनके रोज़गार में एक अहम योगदान प्रदान करती है'। उनका अनुभव यह भी रहा है कि बस्तियों में घरों व मूल भौतिक सुविधाओं के अभाव में स्वास्थ्य सेवाओं का प्रभाव सीमित रहता है।

आधारभूत सुविधाओं का विकास तथा मूल सुख सुविधाओं की मौजूदगी न केवल स्वास्थ्य, शिक्षा और आमदनी को प्रभावित करती है बल्कि इसका प्रभाव शहरी गरीबों के सामाजिक जीवन और सशक्तता पर भी दिखाई देता है। 'परिवर्तन' द्वारा बस्तियों में आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता ने बस्तीवासियों के जीवन में अनेक बदलाव किए हैं। अब यहां बेहतर जल व सीवर कनेक्शन, शौचालय, रास्ते व स्ट्रीट लाइट हैं। इसके अलावा, अब स्कूलों में हाज़िरी बढ़ी है तथा निरक्षरता में कमी आई है; रोज़गार के मौके भी अधिक हैं। स्वास्थ्य के नज़रिये से बीमारी व रोगों के आंकड़े 17% से घटकर 7% हो गये हैं और हर घर में मासिक स्वास्थ्य खर्च पर 121 रुपयों की जगह 87 रुपये व्यय हो रहे है। रोज़ाना नहाने वाले लोगों का अनुपात 66% से बढ़कर 98% हुआ है।

लोगों के जीवन को बेहतर बनाने का यह प्रयास बहु-पक्षीय है और इस तथ्य का अच्छा उदाहरण भी है कि स्वास्थ्य के सामाजिक कारकों का लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। आधारभूत सेवाओं, रोज़गार, शिक्षा व सामाजिक सशक्तिकरण सभी पहलुओं पर ध्यान देने और इन्हें उन्नत बनाने से बस्तियों में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जा सकता है।

बीजल भट्ट *महिला सेवा आवास अहमदाबाद ट्रस्ट की समन्वयक हैं।*

पानी बहता रहे-महोबा की चांपाकल मैकेनिक

महोबा के गांवों में ग्रामोन्नति संस्थान ने *वाटर एड* की परियोजना के तहत सात महिलाओं के एक समूह को मैकेनिक का काम सिखाया है- ये मैकेनिक अपने गांव के चांपाकल की देखभाल करती हैं और एक साथ मिलकर बड़े से बड़े सुधार को चुटकियों में निपटा देती हैं। कोहनी तक पानी मिट्टी और ग्रीस में डूबी इन महिलाओं को देखते ही आप इनकी काबलियत और प्रतिबद्धता का अनुमान लगा सकेंगे।

इन महिलाओं की भूमिका अहम है। पहले सरकारी पम्प खराब हो जाने पर इनकी मरम्मत करने में महीनों लग जाते थे। औरतों को पानी भरने के लिए गांव के कुंओं या दूसरे इलाके के चांपाकलों तक जाना पड़ता था। पर अब यह समस्या सुलझ गई है।

'पानी के कारण हम औरतों को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता था। चांपाकल बिगड़ जाने पर उसे सुधारने के लिए पुरुषों का मुंह देखना पड़ता था। ग्राम प्रधान के पास जाकर मिन्नतें करने पर भी कुछ नहीं होता था। इसलिए हमने तय किया कि इस काम को हम खुद सीखेंगे और चांपाकल की मरम्मत खुद करेंगे' मैकेनिक रामसखी ने बताया।

'चूंकि परिवार की देखभाल का प्रमुख दायित्व महिलाओं का होता है इसलिए इस परियोजना में शिरकत महत्वपूर्ण बन जाती है। इन भूमिकाओं में महिलाओं की भागीदारी से लोगों के नज़रिए में भी बदलाव आता है। औरतों के पास सम्पत्ति व आवास के अधिकार नहीं होते। वे पढ़ी-लिखी भी कम ही होती हैं। मैकेनिक का काम सीखने और समूह के साथ जुड़ने के कारण हम अपनी ज़िंदगी पर नियंत्रण हासिल करते हैं और लोगों के विचार भी हमारे बारे में अच्छे हो जाते हैं', शीला ने जोड़ा। एक अन्य महिला उमा ने बताया, 'हम मैकेनिक इसलिए बनीं क्योंकि हम यह रूढ़िवादी परम्परा तोड़ना चाहती थीं कि यह काम केवल पुरुष ही कर सकते हैं। अब हम यह दिखा सकते हैं कि औरतें भी मैकेनिक बन सकती हैं।'

'अब यहां लैंगिक समानता थोड़ी बेहतर हुई है और हममें आत्मविश्वास बढ़ा है। पहले हम गांव से बाहर जाने में बहुत घबराते थे। अब गांव में पानी की समस्या होने पर हम अपने स्वावलंबन समूह में इसकी बात करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर ज़िला मजिस्ट्रेट के पास शिकायत लेकर भी जाते हैं। हमने सरकार को अर्ज़ी देकर गांव में दो नए चांपाकल भी लगवा लिए हैं,' एक महिला मैकेनिक ने बताया।

औरतों ने हमें यह भी बताया कि इस बदलाव की लहर दूसरे गांवों तक कैसे पहुंच रही है। 'पहले पहल जब हम चांपाकल की मरम्मत करने दूसरे गांव जाते थे तो पुरुष हमें कहते थे कि तुम लोग इस काम को क्या जानो? पर अब पुरुष हमारे पास आकर चांपाकल की मरम्मत करने को कहते हैं। वे सामान लाकर देते हैं और हम उनकी मदद करते हैं।'

पर औरतों सिर्फ़ बिगड़े चांपाकल ही नहीं सुधारतीं, वे ग्रामवासियों को अच्छे स्वास्थ्य और स्वच्छता के फायदों को भी समझाती हैं जिससे समुदाय इन स्वास्थ्य सुविधाओं से लाभांवित हो सकें।

'अब बच्चे भी पढ़ने में रुचि ले रहे हैं। औरतें साईकिल चलाती हैं और इस प्रगति का प्रभाव हमारे परिवारों और बच्चों पर पड़ रहा है। जैसा कि रामसखी ने कहा, 'पहले हम अपना मुंह छुपाकर घूमते थे पर अब दुनिया के सामने खुलेआम घूमते हैं।'

साभारः वॉटर एड इंडिया

आपबीती

अब मैं कोई अनजान नहीं हूं

अमाई टोरिरो (बीच में)

"मेरा नाम अमाई टोरिरो है। यह मेरी ज़िंदगी की कहानी है जिसमें मेरे स्वास्थ्य कार्यकर्ता बनने के बाद काफी बदलाव आया। सन् 1995 में मेरा पति मुझे व सात बच्चों को छोड़कर चला गया। छः साल तक वह एक दूसरी औरत के साथ रहता रहा। फिर वापस लौटकर हमारे पास आ गया। दो वर्षों के भीतर मेरा पति गुज़र गया। मैं अपना घर-बार संभालती रही।

शुरू-शुरू में मुझे काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा क्योंकि मेरे पास पैसे नहीं थे। फिर मैं सामुदायिक स्वास्थ्य क्लब के साथ जुड़ गई जो ज़िम्बाबवे की 'अहेड' संस्था का हिस्सा था। हम अपने क्लब को 'रूजेको' कहते थे जिसका अर्थ है रोशनी। छः माह तक मैंने स्वास्थ्य सत्रों में हिस्सा लिया जहां मुझे कुछ ऐसी नई बातें सीखने को मिलीं जिनसे मेरी व बच्चों की ज़िंदगी बेहतर बनी। यहां मुझे स्वच्छता व परिवार की देखभाल में साफ़-सफ़ाई का महत्व समझाया गया। कुछ आम बीमारियों जैसे दस्त, मलेरिया, चर्मरोग, पेट में कीड़े व यौन संक्रमण से बचने के तरीके भी सिखाये गये। छः महीनों में मैं एक कुशल स्वास्थ्य कार्यकर्ता बन गई। मेरे पास प्रशिक्षण प्रमाण पत्र भी मौजूद था।

अपनी मीटिंगों में हमने रोज़मर्रा के जीवन को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक बातों पर चर्चाएं कीं और गृहकार्य के ज़रिए इस ज्ञान को जीवन में उतारा। सबसे पहले बच्चों के साथ मिलकर हमने अपने घर के आंगन में एक कूड़ा डालने का गड्डा खोदा। अब हम सारा कचरा इस गड्डे में डालते थे। रसोई के लिए हमने मिट्टी के बर्तन और उन्हें धोकर सुखाने के लिए शैल्फ व रैक बनाए। पीने के पानी को ढककर रखा तथा उसे निकालने के लिए लुटिया का उपयोग शुरू किया। घर के बाहर हमने एक कुआं तथा गड्डानुमा पाखाना भी बनाया। अब मेरे बच्चों की सेहत काफी बेहतर है और वे कम बीमार पड़ते हैं।

क्लब के हर सदस्य को आर्थिक बेहतरी के लिए काम सिखाया जाता है। मैंने भी तेल निकालना, मच्छरदानी सीना और कागज़ बनाना सीखा। मेरे दो बच्चों ने भी कागज़ बनाना सीखकर नौकरी शुरू कर दी। क्लब के कुछ सदस्य मधुमक्खी पालन से भी जुड़े थे। मैंने घर के पास काफी पेड़-पौधे लगाए तथा सब्ज़ियां उगाईं। इन सभी घरेलू उद्योगों से पैसे जमा करके मैंने चार कमरों का मकान बनाया जिसमें इंट की दीवारें और टीन की छत है। ड्रिप सिंचाई के माध्यम से मैंने अपने घर में विभिन्न प्रकार के हर्ब, जड़ी-बूटियां व सब्ज़ियां उगाई हैं। शहद, सब्ज़ी व हर्ब बेचकर मैं अच्छा-खासा पैसा जमा कर लेती हूं।

एक औरत होने के नाते मेरे लिए घर व बच्चों की देखभाल बहुत महत्वपूर्ण है। अब मैं अपने बच्चों को अच्छे स्कूल में पढ़ा रही हूं और साथ ही उन्हें अपना जीवन बेहतर बनाने के लिए प्रेरित भी करती हूं। आज हम सब खुश, आज़ाद और गर्व से जीते हैं। ज्ञान व कौशल के ज़रिए मैं सशक्त महसूस करती हूं।

हमारा स्वास्थ्य क्लब गांव के अन्य महिलाओं व परिवारों की भी मदद करता है। हम एड्स ग्रस्त लोगों को छोटे-छोटे संक्रमणों से बचाए रखने में भी मदद करते हैं। उनकी देखभाल करने वालों को हम प्रशिक्षण देते हैं। जब गांव में कोई मर जाता है तो हम उस परिवार को अपने जीवने की बागडोर संभालने में मदद करते हैं। अनाथ बच्चों, बुजुर्गो व विधवा औरतों को भी हम कपड़ों व भोजन देकर मदद करते हैं।

हम स्वास्थ्य कार्यकर्ता हर हफ्ते मिलकर खेलते-कूदते हैं और दुख-सुख बांटते हैं। हमारे इलाके में अब बीस स्वास्थ्य क्लब हैं और हरेक में 100 सदस्य हैं। मकोनी ज़िले में कुल 200 क्लब हैं और लगभग बीस हज़ार लोग इसके सदस्य हैं। इन क्लबों में मुझ जैसी कई औरतें है जिनके साफ़-सुथरे घर और सशक्त-स्वास्थ्य बच्चे हैं। इस पृथ्वी पर मैं अपने योगदान से खुश हूं हालांकि मैं जानती हूं कि मुझे एड्स है और मेरी मौत कभी भी हो सकती है।"

सन् 2010 में अमाई टोरिरो की मृत्यु हो गई। अमाई ने अपने काम व ऊर्जा के ज़रिए अपने समुदाय के सामने सशक्तता और वचनबद्धता का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। हांलाकि वह अकाल मृत्यु का शिकार हुई फिर भी उन्होंने अपने पैरों पर खड़े होकर परिवार व बच्चों का पालन-पोषण किया। मकोनी ज़िले के लोग अमाई को स्नेह के साथ याद करते हैं। जैसा कि अमाई ने एक बार हमें कहा था, 'अब मैं कोई अनजान नहीं हूं।' हम अमाई की यह कहानी उन्हीं के शब्दों में आपके साथ बांट रहे है जिससे अन्य लोगों को भी प्रेरणा मिल सके।

रमिया

नमिता सिंह

लाल होता सूरज तेज़ी से पश्चिम की ओर सरक रहा था। पास की टेढ़ी बगिया के पेड़ों पर चिड़ियों और कौवों की हलचल सुनाई देने लगी थी। रमिया का दिल धुक-धुक करने लगा। सुन्नरी का अभी तक कहीं पता नहीं था। रमिया बाहर नीम के नीचे पड़ी झिलँगी चारपाई पर बैठ गयी। उसके पैर कांप रह थे।

छोटी बहू पानी का घड़ा भरकर आती दिखाई दी। आजकल पूरे दिन चढ़ रहे हैं उसे। हज़ार बार कहा है कि दो चार दिन इधर सहूलियत से रह ले। निबट ले इस मुसीबत से, फिर जो चाहे कर...मगर मानेगी नहीं।

"अरी छोटी, ला मुझे दे घड़ा। तुझसे मना किया है न..."

"मैं क्या रात तक तुम्हारा आसरा देखती रहूंगी? काम तो करना ही है...छोटी बहू ने पल्ला ज़रूर माथे तक कर रखा था लेकिन ज़बान की तेज़ी में कमी नहीं थी।

उसने बहू के सर से घड़ा उठा लिया। डगमगाते पैरों से ऊपर गयी और टपरे के अन्दर रख आई। फिर उसने मटकी में से आटा निकाला। उंगलियां फिराती रही लेकिन गूंथने का मन नहीं किया।

"तू ही कर ले री रोटी। मेरा जी ठीक नहीं है। क्या बताऊं...सुन्नरी नहीं लौटी अभी तक...जाने क्या बात हो गयी।"

छोटी बहू ने कोई जवाब नहीं दिया। उसे शायद अन्दाज़ा था कि जल्दी ही ऐसी नौबत आने वाली है। लेकिन वो भी क्या कर लेती? यूं ही खामखा की एक मुसीबत बिना बताये आ टपकी थी।

सुन्नरी को ससुराल से लौटे करीब छह महीने हो गये थे। रमिया का आदमी जब तक नौकरी में रहा घर पर सब ठीक ठाक चलता रहा। खुद म्युनिसिपैलटी में जमादार था। खासी तनखा। दो लड़के और दो लड़कियां। बड़ी लड़की पहले ही ब्याह दी थी। बड़े लड़के फूला की नौकरी कह सुनकर अपने रहते जमादार ने म्युनिसिपैलटी में लगवा दी। चार-पांच सौ रुपये ज़रूर खरचने पड़े लेकिन काम हो गया।

छोटे को पढ़ने के लिए चुंगी के स्कूल में भेजा गया। सोचा, चार आखर पढ़ लेगा तो कोई नौकरी मिल जायेगी। लेकिन हरिया...उसका पढ़ने में बिल्कुल मन नहीं। सड़कों पर आवारागर्दी करता घूमता। कुछ नहीं तो कूड़े के ढेरों को खंगालता रहता। आखिरकार एक दिन रमिया ने उसके बाप से कह दिया कि नहीं पढ़ता तो न पढ़े। न मिलेगी दफ्तर की नौकरी! पेट तो पाल ही लेगा अपना। दुनिया में बहुतेरा पड़ा है करने-खाने को...

और हरिया को मुक्ति मिली। अब वह सवेरे ही अपना बोरा लेकर निकल जाता और मुहल्लों के कागज़-गत्ते के टुकड़े वगैरह बटोरता फिरता या फिर एक डंडी के सहारे कूड़ों के ढेर उलटता-पलटता। कभी-कभी तो खल्लास लेकिन कभी-कभी काफी कुछ मिल जाता। किसी दिन मौज आ जाती तो अपनी खटारा साइकिल पर चूं-चपर-चूं-चपर करता हुआ मोहल्लों और कॉलोनियों की तरफ निकल जाता। रद्दी, लोहा आदि जो भी मिल जाता उसे बेच देता है कबाड़ी के पास। अपनी रोटी लायक तो मिल ही जाता है उसे।

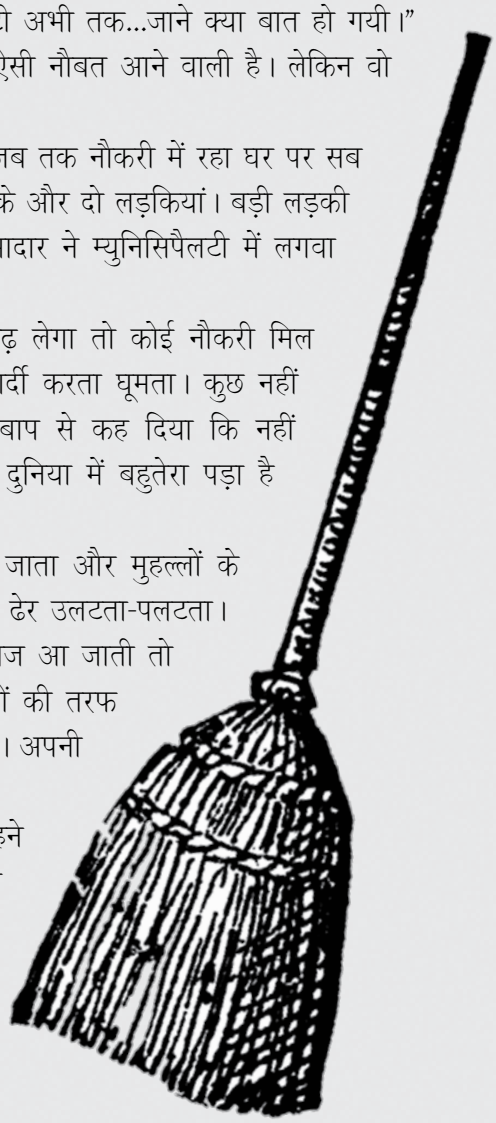

बुढ़ऊ के रिटायर होने के बाद आमदनी कम हो गयी। बुढ़ऊ की नौकरी न रहने पर पता नहीं हरिया के ससुराल वाले क्या सोचें-गौना करें कि न करें। इसलिए पहली फुर्सत में रमिया ने हरिया का गौना करवाया और बहू को घर ले आई।

बड़े फूला ने अपनी कोठरी के बाहर अपने बाप को एक छोटी-मोटी दुकान खुलवा दी। छोटा-सा मेहतर टोला-पच्चीस तीस घर। रोज़मर्रा की ज़रूरत लायक थोड़ा-बहुत सामान रख लिया। सौ-पच्चास रुपये लग गये लेकिन कोई खास घाटे का सौदा न रहा। दो-चार रुपये रोज़ की आमदनी हो ही जाती है।

लेकिन इसका बदला फूला ने हरिया के गौने के बाद ले लिया। एक दिन बेबात की बात निकाल, झगड़ा कर बैठा और हरिया तथा उसकी बहू का सामान ऊपर टपरे पर फेंक दिया! साफ़ था कि उसने कोठरी पर अपना पूरा हक़ जमा लिया था। रमिया और बुढ़ऊ तो वैसे भी बाहर दालान पर सोते थे।

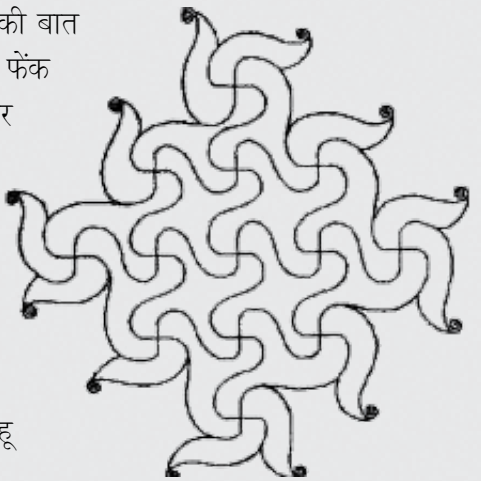

हरिया का वैसे ही मिजाज़ तेज़! उसने आव देखा न ताव, उठाया एक डंडा और दे मारा अपनी नई नवेली बहू पर... "लो, यही है न झगड़े की जड़! इसका आना ही तो तुम्हारे कलेजे में गड़ रहा है। ठंडा कर लो अब अपना कलेजा..."

बड़ी बहू फौरन भागी और उसने दोनों हाथों से हरिया को कसकर पकड़ लिया। फूला ने चार झापड़ मारे हरिया को और डंडा उठाकर फेंक दिया। छोटी बहू तो चीख मारकर वहीं लोट गयी।

रमिया को पता चला तो भागी-भागी आई। पहले जी भरकर उसने गालियां दीं—फूला को, फूला की बहू को और फिर फूला के बाप को जो अपाहिज बनाकर सब देख रहा था। फूला ने बाप को पैसे से क्या मदद की, मानो बेदाम का गुलाम बना लिया हो उसे। जब रमिया ने बहुत हल्ला-गुल्ला कर लिया तो वह उठा—रमिया के बाल खींचकर उसे दो हाथ मारे और बोला।

"हरामजादी—ससुरी! बहुत बड़ बड़ कर रही है। गाड़ दूंगा यहीं...।"

रमिया चुप होने वाली नहीं थी। उसने बुढ़ऊ को सात पुश्त किनारे लगा दीं—किसी को नहीं बख्शा।

फूला और उसकी बहू का भी क्रिया-करम कर डाला। वह समझती थी कि इन्हीं लोगों की कारस्तानी से सब झगड़ा-टंटा हुआ है? बकती-झकती आखिर में वह छोटी बहू को उठाकर बाहर ले गयी। दो दिन उसे पड़ोस के एक घर में रखा। हरिया और उसने दो रात मेहनत करके सड़क के किनारे बन रही बिल्डिंग की ईंटों को ढोया। छत पर ईंटें चिनकर उस कोठरी की शक्ल दी। ऊपर से एक पुरानी टीन डाली—टीन पर बरसाती का एक टुकड़ा... और छोटी बहू को ऊपर ले आयी उसके नये बसेरे में।

"यहां रहो तुम लोग। उन हरामियों के मुंह लगने की जरूरत नहीं अब।" खुद रमिया का क्या! जहां रहेगी, वहीं अपना खरचा पानी देगी और दो रोटी खा लेगी। रात सोने के लिए कभी छत के कोने पर पड़ी रहती तो कभी नीचे दालान पर आ जाती।

छोटी लड़की सुन्नरी। सबसे छोटी। मारे लाड़ के बचपन में रखा नाम सुन्दरी न जाने कब सुन्नरी हो गया? रमिया की लड़ैती। सजा-संवार कर छाती से लगाए रहती उसे! मां के साथ काम पर बचपन से ही कोठियों पर जाने लगी थी! रमिया घरों में झाड़ू लगाती, पाखाने साफ़ करती—और छोटी-सी सुन्नरी-ताका करती टुकुर-टुकुर! उसे अम्मा के साथ रहते अच्छा लगता। फिर धीरे-धीरे उसने भी हाथ में झाड़ू पकड़ी! शुरू में तो वह रमिया को मदद देने के लिए काम करती। फिर ज्यों-ज्यों वह बड़ी होने लगी, लोगों को उसका काम पसन्द आने लगा। अब उसने अपने कुछ अलग घर कर लिए। रमिया ने भी सोचा, चलो अच्छा है। दो पैसे जुड़ जायेंगे।

सुन्नरी रहती बहुत ठसक से। चुप रहकर अपना काम करती। नज़रें नीचे रहतीं! जब कभी नज़रें ऊपर उठाकर देखती तो उसका कोई मतलब होता। पहनने के लिए एक से एक फैशन वाले कपड़े, उसे कोठियों से मिल जाते! उन लोगों की देखा देखी सजना संवरना भी खूब सीख गयी! सुन्नरी जवान हो रही थी! चढ़ती उम्र-फुर्तीला बदन-तेज़ चलते हाथ। लोगों को रमिया की जगह उसका काम ज़्यादा पसन्द आने लगा था।

एकाएक सुन्नरी ने आना बन्द कर दिया। पता चला कि सफ़ाई संघ के लोगों ने अपने-अपने मुहल्लों में तय किया था कि बहू-बेटियों अब घरों मे काम पर नहीं जाया करेंगी। यह इज़्ज़त का सवाल है। जब तक घरों हमारी बहू-बेटियां डोलती रहेंगी तब तक खाक हमें कोई इज़्ज़त देगा। कोठियों पर काम करने के लिए बड़ी बूढ़ी चाहे तो चली जायें लेकिन और कोई नहीं जायोगा। जो जायेगा उसे बिरादरी से बाहर कर दिया जायेगा।

दूसरे दिन रमिया ने सब घरों में रो रोकर बिरादरी वालों का फैसला बताया! भला बताओ ढलती उमर उसकी। कैसे अकेली सारा काम करेगी! अरे-किसी को ठीक से भरपेट रोटी खाते नहीं देख सकते ये लोग। अब पूछो-काम न करेंगे तो क्या ये बिरादरी वाले आकर खिला जायेंगे हमें...हर किसी को किस्सा सुनाते-सुनाते उस दिन रमिया को लौटने में इतनी देर हो गयी कि उसे दोपहर की रोटी भी न मिली। सुन्नरी के काम भी पड़ गये थे उस पर!

लेकिन यह किस्सा ज़्यादा नहीं चला? एक हफ्ते बाद सुन्नरी फिर मौजूद थी अपनी मां के साथ! उसका चेहरा खिला-खिला पड़ रहा था? उसकी आंखें हंस रही थी? अपनी विजय पर वह बहुत खुश थी।

"क्यों री! आ गयी तू!"

"हां बीबीजी," सफेद दांतों की लड़ी चमकाकर जवाब देती वह।

"क्या हुआ तुम्हारी पंचायत का सुन्नरी?"

"अम्मा से पूछो," और हंस देती खिल्ल से वह।

रमिया! उसके पास तो पूरा पुलिन्दा था बताने के लिए। कैसे वह पंचायत वालों से जाकर लड़ी। एक-एक को ऐसी सुनायी कि बस! काम करने से क्या इज़्ज़त घटती है? उसकी सुन्नरी तो काम करेगी-ज़रूर काम करेगी। अरे, कोई चोरी नहीं कर रही, कुछ और गलत काम नहीं कर रही। कमा-खा रही है। आग लगे इन पंचायत वालों पर। सोचते हैं कि काम करके पैसा जुड़ायेगी तो फिर उनसे करज लेने कौन आयेगा?

सुन्नरी की शादी उसने खूब मन से की। लड़का अच्छा मिल गया। लड़के का बड़ा भाई बम्बई में था। रेलवे में जमादार। वहीं उस लड़के की नौकरी भी थी। अभी तो कच्ची थी—एवजी वाली लेकिन दो साल से ज़्यादा हो गया था इसलिए उम्मीद थी कि जल्दी ही पक्की नौकरी वाला हो जायेगा। और क्या चाहिए सुन्नरी को। लेकिन बम्बई...बहुत दूर पड़ जायेगी सुन्नरी। अरे क्या है? सास-ससुर तो उसके यहीं हैं। आती-जाती रहेगी। फिर रेलवे की नौकरी ठाट से जहां चाहे आये-जाये। उसे क्या कमी होगी! सुन्नरी खुश थी—उसकी अम्मा भी खुश...भाई-बाप सब खुश। आखिरी काम निबट गया राजी खुशी से। रमिया हैसियत से ज़्यादा खरच कर गयी। दो तो सुअर कटवा दिए दावत में। जमकर दारू पिलायी। कौन रोज़-रोज़ ये मौका आता है।

शादी हो गयी। लड़का दो महीने के लिए छुट्टी पर आया था। रमिया ने फौरन दस दिन बाद गौना कर दिया। अब बच्ची तो है नहीं सुन्नरी। भरी जवानी के दिन। परदेस का मामला। ले जाये अपने साथ।

लड़के की छुट्टी खत्म हुई तो वह वापस बम्बई चला गया, लेकिन सुन्नरी? वह तो वहीं रही। ज़्यादातर ससुराल रहती, कभी मायके आ जाती। बड़ा भाई फूला कई बार ससुराल जाकर मालूम कर आया, लेकिन बम्बई की कोई खबर नहीं थी। आखिर हारकर रमिया ने वहां के लिए चिट्ठी लिखवायी कि आकर बहू को ले जाओ वरना शादी बरखास्त कर देंगे।

होली के मौके पर सुन्नरी के जेठ और जेठानी आये। वे लोग उसे लेने आये थे। लड़के की नौकरी अभी पक्की नहीं थी, इसलिए उसे छुट्टी नहीं मिली थी।

रमिया ने जीभ अपने दांतों तले दबा दी। हरे राम! यह तो न मालूम क्या-क्या सोच रही थी। ये तो बड़े अच्छे लोग हैं। रोते-कलपते मां ने, भाभी ने सुन्नरी को गले लगाया और विदा किया। अपने घर जाये... राज करे। ब्याह हो जाये तो फिर लड़की अपने घर ही भली।

सुन्नरी अपने स्वर्ग पहुंची तो पता चला कि वह तो वीराना है—जंगल है। जिस घर में आदमी न बसे वह तो जंगल ही कहलायेगा।

उसके जेठ-जेठानी उसको उसका अपना कोठरीनुमा घर सौंपकर चले गये। वे लोग दूर, किसी और जगह पर रहते थे।

नई जगह-नया आदमी-नए लोग। धीरे-धीरे वह बाहर, पास-पड़ोस में उठने-बैठने लगी। नई जगह का डर कम हुआ। वह रेलवे वालों की कॉलोनी ही थी। कॉलोनी के पीछे ये कुछ दस-पन्द्रह कोठरियां रेलवे जमादारों और खलासियों की थी। सब अपने जैसे ही लोग थे।

और कोठरी का मालिक। उसका अपना आदमी? वह तो अब गायब रहने लगा था। दो-दो, तीन-तीन दिन हो जाते उसकी आवाज़ सुने? हफ्ते दस दिन में एक दिन ज़रूरी राशन पानी डाल जाता। बस! कभी तड़के सवेरे आता कभी दिन में। नहाता-धोता, कपड़े बदलता। खाना कभी खा लिया कभी नहीं? और चल देता। कहता कि रात की ड्यूटी है। वह तो डर के मारे अधमरी-सी हो गयी थी। उसकी समझ में न आता कि क्या बात है? वह इतनी बुरी तो नहीं? फिर, अच्छी है या बुरी—यह तो साथ रह कर ही किसी को पता चलता? उसका आदमी तो उसकी तरफ आंख उठाकर देखता भी नहीं था।

एक दिन! सुन्नरी ने पकड़ लिया उसे। दरवाज़े पर उसने भीतर से ताला डाल दिया। भूखी शेरनी की तरह हो रही थी वह? आंखें जल रही थीं। सारा बदन कांप रहा था। बुखार की सी गर्मी उसके सारे बदन में भर गयी थी।

सुन्नरी के मरद ने सुन्नरी के बदन से उठते ये लू के थपेड़े महसूस न किए हों, ऐसी बात नहीं थी। सुन्नरी की आंखों से उठते शोले, उसका लाल तपता चेहरा-उसने देखा, और वह चुप पड़ गया। उसने निगाहें नीची कर लीं!

आखिर आंखें क्यों नहीं मिलाता वह! क्या समझता है वह सुन्नरी को? वह भी कमज़ोर नहीं। आज वह बात करके रहेगी। सुन्नरी ने उसकी ठोड़ी पकड़ ली।

"मुंह ऊपर कर? क्यों भागता है इस तरह? साथ नहीं रखना था तो क्यों बुलाया था मुझे यहां?"

"मैंने कब बुलाया? तू खुद आई।"

"अपने भाई और भाभी को किसने भेजा था?"

"मैंने नहीं भेजा। वे लोग खुद गये थे।"

"तूने नहीं भेजा उन्हें? तूने नहीं बुलवाया मुझे? तो भेज दे मुझे वापिस?"

"तू खुद आई है-खुद चली जा।"

"अच्छा! खुद चली जा? शादी करने मेरे दरवाजे पर क्यों आया था? इसलिए कि इस अनजान जगह पर मुझे पटक दे और खुद गायब हो जा?"

"शादी मैंने नहीं की। मैंने तो मना करी थी। भाभी ने जबरदस्ती कराई।" और तू तो लल्लू था ना! नामरद!

सुन्नरी बिफर उठी। उसने तय कर लिया कि आज वह फैसला करके रहेगी। उसकी सांस धौंकनी की तरह चल रही थी। उसको फिर दरवाज़े की ओर बढ़ते देख सुन्नरी ने उसका कालर पकड़ लिया।

"कहां जा रहा है तू? यह तो तेरा ड्यूटी का बखत नहीं है? पड़ोस की बेदा चाची का लड़का कह रहा थ कि तू रात की ड्यूटी कर रहा है आजकल। ये धुर दोपहरी कहां जा रहा है इस बखत?"

"भाभी के पास। बुलाया है उसने..."

"भाभी...भाभी...भाभी। तेरी भाभी है या तेरी भी बीवी है वह! मेरा घर उजाड़ रही वह डायन"...और उसे लगा कि भरे बाज़ार में किसी ने उसे नंगा कर दिया हो। वह खूसट औरत उसके सुख चैन पर डाका डाल रही है। सुन्नरी की मानो कोई हस्ती ही नहीं...यह गहरा अपमान बोध उसे भीतर तक चीर गया। कैसा गुस्सा करे! किस पर को? इस मिट्टी के लौंदे—भाभी के गुलाम पर? सब बेकार है...और वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उसके भीतर की सारी तपन, सारी आग, आंखों के रास्ते पानी बनकर बह निकली। रोते-रोते वह वहीं लोट गयी। उसका आदमी जाता है तो जाय! वह नहीं रोकेगी!

सुन्नरी तो बिल्कुल बेआसरा हो गयी। अब तो रही सही सारी उम्मीद भी खत्म हो गयी थी। इन बातों से बेखबर ही रहती या कोई मुसीबत आ पड़ी होता तो एक बहाना होता? अब किसके वास्ते वहां टिकी रहे—क्या करे! एक दिन मौका मिला तो सीधे टिकट कटाकर पड़ोस के एक आदमी के साथ दिल्ली आ गयी। इस तरह अपना सुख सौभाग्य लिए दिए सुन्नरी वापिस अपने घर पहुंची गयी।

जिसने देखा वही हैरान! इतनी हिम्मत? इतनी दूर से अनजान आदमी के साथ? वह साथ वाला ही कहीं लेकर भाग जाता तो? क्या दुर्गत होती? यह सब इसकी मां की शह है? उसी ने इसकी आदतें बिगाड़ी हैं वरना क्या यूं ही छोड़ देता इसका मरद? रमिया ने उसे घर पर देखा तो पहले खूब रोई अरे-वह तो पहले ही कहती थी न कि कोई बात ज़रूर है। चुड़ैल, वह जिठानी कैसा लाड़ जता रही थी सुन्नरी के ऊपर! ढोंगी-पाखंडी...उसने लाख शुक्र मनाया कि उसकी सुन्नरी सही सलामत घर आ गयी। वहां परदेस में अकेली क्या करती? कही मारकर गाड़ देते उसे तो? इतनी दूर से कुछ पता भी नहीं चतला।

सुन्नरी के दोनों भाई फूला और हरिया दूसने दिन ही उसकी ससुराल गए और उसके सास-ससुर, दोनों को जी भरकर गालियां सुनाकर आये।

सुन्नरी कुछ दिन चुपचाप घर पड़ी रही। फिर उसने रमिया के साथ काम पर निकलना शुरू किया। रमिया ने कुछ घर और ले लिए और पहले की तरह काम करने लगी। कोई पूछता तो वह चुप न रहती, सबको बता देती। उसे क्या शरम? वह हरामी जब अपनी भाभी के साथ फंसा है तो कहना तो पड़ेगा ही? वरना लोग समझेंगे कि उसमें ही कोई खोट होगा जो अपने मरद को बांध नहीं पायी।

रमिया ने अब अपने बुढ़ऊ और बेटों के कान खाने शुरू कर दिए कि सुन्नरी के लिए जल्दी ही कोई और लड़का ठीक कर लो। जवान लड़की चढ़ती उमर! चोट खाए सांप-सी फनफना रही है। कहीं कुछ उल्टा सीधा होय, इससे पहले ही कुछ इन्तजाम कर दो उसका!

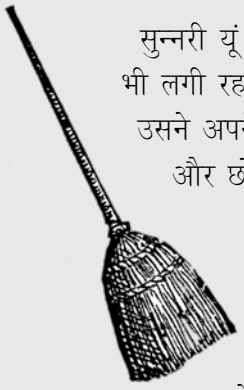

सुन्नरी यूं तो ठीक थी लेकिन उसने अब बोलना और कम कर दिया था। चुप अपना काम करती रहती। घर में भी लगी रहती हर बखत किसी-न-किसी काम में। सफ़ाई करती, पानी लाती, रोटी पकाती। छोटी बहू का पूरा काम उसने अपने हाथ में ले लिया था। फिर भी अन्दर-ही-अन्दर उठ रहे तूफान की सांय-सांय रमिया महसूस करती थी और छोटी बहू भी।

इधर कुछ दिनों से काम पर जाते बखत सुन्नरी ने रमिया का साथ छोड़ दिया था।

"तू धीरे-धीरे चलती है। मेरे कामों में देर हो जाती है। परली कोठी वाली मास्टरनी जल्दी बुलाती हैं मुझे...और वह जल्दी घर से निकल जाती।

और, आज अचानक यह हो गया कि सुन्नरी गायब हो गई।

छोटी बहू ने दो दिन पहले सुन्नरी को अपनी बकसिया में कपड़े ठीक से लगाते देखा था। उसे ध्यान आया तो फौरन जाकर देखा। बकसिया गायब थी।

रमिया को जब मालूम हुआ तो सर पटक कर रो पड़ी। फिर थोड़ी देर बाद आंसू पोछती हुई बोली।

"मैं जरा हरी नगर कॉलोनी तक हो आऊं। तू अभी कुछ मत कहियो, किसी से...

वह कॉलोनी तक गई! इधर-उधर खड़ी रही बेमतलब! एक चक्कर लगा आई! कब तक यहां ऐसे डोलती रहेगी। शाम का बखत। सड़क की बत्तियां जलने लगी थी। उसके थके-हारे पैर वापिस लौटने लगे।

रास्ते में रामजीलाल की कोठरी दिखी। आज अचानक उसकी कोठरी के बाहर ताला लटका देखा तो उसे कुछ ताज्जुब हुआ। दो एक बार रामजीलाल को उसने कोठरी के बाहर सुन्नरी से बातें करते देखा था! रामजीलाल रमिया की ननिहाल का था और इस नाते उसे मौसी कहता था। कुछ दिन वह भी म्युनिसिपैलटी में किसी की एवजी में जमादार रहा। फिर नौकरी छूट गयी तो रिक्शा चलाने लगा।

रमिया के मन में बहुत सारी बातें उमड़ने लगी। इस तरह से कोठरी बन्द और मोटा ताला? क्या कहीं बाहर चला गया है रामजीलाल? उसे दरवाज़े की दरार से हल्की रोशनी दिखाई दी।

"रामजीलाल-ओ रामजीलाल" उसने ज़ंजीर पकड़कर जोर-जोर से खड़खड़ाना और आवाज़ देना शुरू किया।

कोठरी के पीछे से कोई निकलकर आया। वह रामजीलाल नहीं, उसके ही गांव बिरादरी का भोलाराम था जो उसके साथ रहता था।

"रामजीलाल कहां चला गया भोला?" रमिया ने ज़रा ज़ोर की आवाज़ में पूछा तो भोला सकपका गया। कुछ जवाब नहीं दिया उसने।

"मुझे क्या मालूम!"

"सच्ची सच्ची बता रे भोला! हमारी सुन्नरी भी उसके साथ गयी है न! मेरी कसम सच्ची बता"...रमिया की आवाज़ फुसफुसाहट में बदल गयी थी। रमिया की बदहवासी और सूखा मुंह देखकर भोला असमंजस में पड़ गया।

"क्यों! क्या सुन्नरी ने तुमसे कुछ नहीं कहा। वह तो कह रही थी कि मेरे भैया और बाप को पता नहीं होना चाहिए और मेरी मां को सब मालूम है।"

सर पीट लिया रमिया ने! "अरी सुन्नरी...ये क्या कर दिया तूने"...फिर एकदम तमककर भोलाराम से बोली, "तू क्या कर रहा है यहां पर खड़ा-खड़ा? जा भीतर—पड़ा रह कोठरी में! खबरदार जो कुछ भी कहा किसी से!"

"मैं कहां कह रहा हूं किसी से? रामजीलाल ने कहा था कि ज़्यादा परेशानी की बात दिखे तो भाग आना।"

"अच्छा जा तू। ताला मत खोलना..."

थके-हारे कदमों से मेहतर टोला में रमिया घुसी। नीम के नीचे तक पहुंची तो उसे देखकर मानो भूचाल आ गया हो। छोटी बहू ने हरिया को और हरिया ने फूला को और अपने बाप को सब बता दिया था। अपनी ओढ़नी सर पर ठीक करके रमिया ने कमर पर कसकर पल्ला बांध लिया था।

उसे देखते ही दोनों भाई झपट पड़े उस पर। दालान की ओर बढ़ते ही उसकी शामत आ गयी। वह धक्का खाकर गिर पड़ी।

"हरामजादी...कमीनी...भगा दिया लौंडिया को। नाक कटा दी हमारी..."

"रंडी...खुद-साली छिनाल है और वही लौंडिया को बना दिया है। और ले जा उसे अपने साथ? कहां गई है वह?"

रमिया धाड़ मारकर रोने लगी।

"मेरी सुन्नरी, कहां चली गयी री..."

"चुप कर बुढ़िया ज्यादा स्वांग न कर। बता कहां किसके साथ भेजा है उसे, वर्ना आज यहीं तेरी लाश गाड़ूंगा" और सचमुच फूला ने दोनों हाथ से रमिया की गर्दन पकड़ ली।

एक सैकेंड के लिए तो रमिया को लगा कि उसकी आंखें निकलकर बाहर आ जायेंगी। आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया और सर घूमने लगा? पूरी ताकत लगाकर उसे फूला को धक्का दिया और भागी कमरे की तरफ।

उसके दोनों बेटों के सिर पर खून सवार था। वे इतनी आसानी से रमिया को कैसे छोड़ देते। बहन न जाने किसके साथ चली गयी थी और उनकी भरी पूरी इज़्ज़त पर बट्टा लगा गई थी। बहन मिल गयी होती तो अब तक उसका गला दबाकर छुट्टी कर ली होती। किसी न किसी को तो सज़ा मिलनी ही थी।

रमिया बाहर कोठरी की दीवार से लगी खड़ी ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी।

"ना! मैंने कुछ न किया! मैंने न भगाई सुन्नरी। अरे मैं तो खुद उसे ढूंढ़ कर आ रही हूं... अरे मइया...मार डाला बचाओ... मार डाला रे...बचाओ..."

"हरामजादी" फूला दांत पीस रहा था। उसने फिर से रमिया का झोंटा पकड़ लिया। धूल और आंसुओं से सना चेहरा, रूखे अधपके बिखरे बाल और दीवार से सटी खड़ी रमिया रोती हुई—दोनों हाथों से फूला को दूर हटाती हुई फूला ने रमिया का सर दीवार पर ज़ोर से दे मारा।

"बता कहां है वह रंडी...ऐसे बतायेगी... ऐसे बतायेगी... बता कहां गयी है... पूरी बिरादरी की नाक कटा गयी तेरी लाडो। हमारी बेइज्जती करा गयी..."

फूला उसका सर दीवार से मार रहा था और चारों ओर टोले के लोग तमाशा देख रहे थे...रमिया होश खोने लगी। बुढ़ापे का शरीर। थका हारा। सवेरे एक बासी रोटी चाय के साथ निगली थी और फिर सारा दिन अन्न का दाना मुंह में नहीं गया। तिस पर यह मारपीट? उसे लगा वह गिर रही है। उसके चारों ओर की आवाज़ें अब धीमी हो गयी थी। फूला की आवाज़ मानो कुएं में से निकल रही हो। वह दीवार के सहारे सरकती हुई बैठ गयी। उसे गिरते देख कुछ मर्दों ने आकर फूला को पकड़ लिया। हरिया को भी कुछ लोग हटाकर अलग ले गये। उसका अपना आदमी किनारे मुंडेर पर बैठा चुपचाप बीड़ी फूंक रहा था।

"अम्मा-अम्मा..." छोटी बहू की आवाज़ थी। रमिया का होश धीरे-धीरे वापस लौटने लगा था। सर के पीछे टीस-सी उठी। उसने सर दबा लिया। टोले के सभी मरद, बुजुर्ग आ गये थे और फूला तथा हरिया को समझा रहे थे।

"और देख री फूला की अम्मा! तेरी सुन्नरी ने काम तो बहुत ही गलत किया। ऐसे भाग गई खूंटा तुड़ा के। पूरी बिरादरी की नाक कटा दी।"

"अरे अपने पहले आदमी से इस्तीफा करवाती तब ढंग से शादी कर देते उसकी। अब यूं ही किसी के बैठ जाओ। भाग जाओ। इसीलिए हम लोग कमीने हैं और कमीन ही रहेंगे..."

"चच्चा, मुझे तो मिल जाए वह। जिन्दा न छोड़ूंगा और न उस हरामजादे को..."

"ये तो सही कह रहे हो तुम। सजा तो मिलनी चाहिए। नमूना रहे औरों के लिए। अरे, लोग कहेंगे कि छोटी जात के हैं, इसीलिए लौंडिया भाग गयी अपने मरद के रहते।"

तड़पकर रह गया फूला। उसे लगा कि सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते, बड़ा आदमी बनते-बनते सुन्नरी धक्का दे गयी। उन सबको फिर कमीन बना गयी। इतने दिनों की कोशिश, पंचैती...बड़े लोंगों के बीच शुरू ही रही उठक-बैठक, सभी बेकार चली गयी।

"एक बार मालूम भर हो गया। पाताल से भी खोज निकालूंगा। गोली नहीं, मैं तो ऐसा तड़पा-तड़पा कर मारूंगा कि बस!"

"आखिर गयी कहां? किसके साथ..."

"हमें तो चच्चा कुछ भी नहीं मालूम। यही ले जाती थी अपने साथ। हमने तो फैसला भी कर दिया था कि बहू बेटियां घरों में नहीं जायेंगी—यही नहीं मानी। अब बताती क्यों नहीं बुढ़िया। किसके साथ यारी चल रही थी उसकी।"

"देखो, फूला की अम्मा! तुम जानती हो तो बता दो। यह तो पूरी बिरादरी का सवाल है। सभी पर कलंक है।"

रमिया अब पूरी तरह होश में थी। मुरारीलाल की आवाज़ बहुत देर से उसके कानों में बज रही थी और वह चुप थी। अब जब सीधे-सीधे बात कर रहा है। तो बोलना ही पड़ेगा—

"अरे मुरारीलाल! मालूम है, बहुत बड़े नेता हो। चुनाव लड़े हो। अपनी हेड जमादारी से तिमंजिला मकान भी बनावा लिए हो जो इस गली में सुअरों के बीच अटाये नहीं अट रहा। हम लोग तो तुम्हारे सामने भी बहुत छोटे हैं लेकिन एक बात का जवाब दे दो। तुम्हारा लौंडा जब बाबूलाल चमार की लड़की को लेकर भाग गया तब तुमने खुद मदद की। उन्हें अपने घर पर रखा और फिर छुपाकर स्टेशन तक पहुंचाकर आये। तब तुम्हारी नाक ऊंची हुई थी। लम्बा बखत बीत गया तो तुमने सब भुला दिया। तुम्हारा वह कारनामा बड़ा पुन्न का काम हो गया और मेरी दुखियारी सुन्नरी ने एक गलती कर दी तो वह ऐसा पाप हो गया कि तुम सब उसकी जान ले लोगे..."

"चुप रह बुढ़िया" फूला बमक उठा और दौड़ा रमिया की तरफ। लोगों ने उसे पकड़ लिया।

"मुरारी चच्चा के मुंह लगती है! वह मुरारी चच्चा का लड़का था। लड़का और लड़की को एक तराजू में रखेगी। फिर नाक तो बाबूलाल की नीची हुई, हमारी क्या? आज तक वह पलटकर अपने बाप के पास नहीं गयी।"

"अरे गई तो थी एक बार जब कलकत्ते से लौटी थी। सारा चमारटोला उसके पीछे पड़ गया कि भंगन आई है—भंगन आई है। रहने नहीं दिया। बेचारी रोती कलपती यहीं आई। इसी ठौर रही।"

"ये बुढ़िया तो सठिया गई है। औरत जात अकल नहीं है। सब धान सत्ताईस सेर समझती है।"

"वाह वाह! क्या न्याय है! धन्न हो! तुम चमार की लौंडियां भगा लाओ तो सब ठीक। बहुत बड़ा काम। तुम्हारा लौंडिया किसी के साथ चली जाय तो बहुत गलत, पाप...क्या न्याय है...वाह..."

रमिया का मुंह सूख गया था। होंठ पपड़ा रहे थे और कोनों पर सफेद-सफेद झाग आ गया था। लेकिन वह चुप नहीं रहेगी। देख लेगी एक एक को...

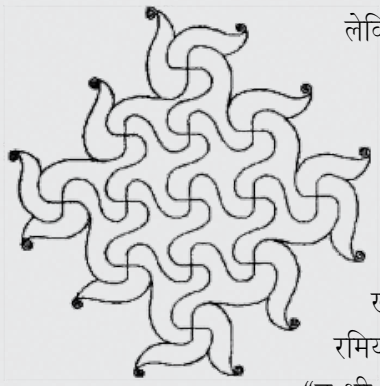

"और यह मिट्टी का माधो-जनखा बैठा-बैठा बीड़ी फूंक रहा है और मुंह में सोना देकर बैठा है। सबके सब लौंडिया को गोली मारने की कह रहे हैं और सुन रहा है। मेरे पेट के जाये मेरी लाश बना रहे हैं और यह बैठा आंखें घुमा रहा है। थू-लानत है। अरे भगवान्—कैसे-कैसे कसाई जन्म दिए मैंने!"

रमिया के आदमी में पहली बार हरकत हुई। मुंह-ही-मुंह में कुछ बड़बड़ता हुआ उठा। खांसते हुए पच्च से वहीं थूक दिया और नीम के नीचे पड़ी खाट की ओर चल दिया। यह देखकर रमिया के बदन में आग लग गई। यही ठीक होता तो उसे इतनी जलालत सहनी पड़ती?

"तू भी आज बहुत इज्जतदार हो गया है। तू मुझे कौन-सा ब्याह कर लाया था?"

रमिया की आवाज़ चीखते-चीखते भर्रा गयी। उसे ज़ोर से खांसी उठी और वह खांसते-खांसते बैठ गयी। भीड़ छंटने लगी। रमिया का क्या भरोसा। कौन से गड़े मुरदे उखाड़ने लगे। किसकी बखिया उधेड़ने लगे। फिर आज तो घायल शेरनी जैसी हो रही है। फूला ने इधर-उधर देखा। मुरारी चच्चा चुपचाप सरक कर जा चुके थे। हरिया कुएं की तरफ जा रहा था। रमिया ने लोगों को खिसकते हुए देखा। फूला अब अकेला-सा हो गया था। वह भी चुपचाप अपनी कोठरी में घुस गया। छोटी बहू अलबत्ता रमिया के पास खड़ी थी।

"चलो उठो अम्मा। बहुत हो गया। सब चले गये...खामखा तमाशा कर दिया...चलो उठो, चलो।" अंधेरा गहराने लगा। मेहतरटोला भी अंधेरे में डूबने लगा था। गली के बाहर लैम्प पोस्ट की रोशनी की एक पतली सी धार नीम से छन-छन कर वहां तक पहुंच रही थी। मर्द तो पहले ही जा चुके थे। औरतें और बच्चे भी अब खिसकने लगे। सिर्फ़ फुसफुसाहटें और चलने फिरने की सरसराहट बच गयी थी।

छोटी बहू का हाथ पकड़कर उठते हुए रमिया को अपना सारा बदन दर्द में डूबा हुआ महसूस होने लगा। अब तक तो वह चिल्ला रही थी। दहाड़ रही थी—मोर्चा ले रही थी। मोर्चा भी ऐसा वैसा? अरी मइया! सारी बिरादरी एक तरफ—उसका अपना मरद-उसकी औलादें एक तरफ और वह निपट अकेली। मार ही डाला उन्होंने आज उसे। बच गई वह। न जाने कैसे बच गई!

रमिया रो रही थी। मोर्चा जीतने के बाद बिलख-बिलख कर रो रही थी। उसका दर्द उभर आया था। उसका अपना दर्द था और उसमें अब सुन्नरी का दर्द भी शामिल हो गया था।

लेख

कचरा छांटती हुई महिला

फ़ोटो: शशि भूषण पंडित

आजीविका के लिए आवाज़

शशि भूषण पंडित

दिल्ली महानगर में ठोस कचरा प्रबंधन एक बड़ी समस्या है। इसके व्यवस्थापन में करोड़ों रुपए खर्च करने के बाद भी इस समस्या में सुधार के कोई आसार नहीं दिखते हैं। आये दिन संसद, विधानसभा, निगमसभा, अखबार और टेलिविज़न में सवाल उठते रहते हैं। इसके सही प्रबंधन का अभाव स्वच्छ व स्वस्थ जीवन को प्रभावित तो करता ही है साथ ही पर्यावरण को भी दूषित करता है। ठीक तरीके से कचरा प्रबंधन नहीं होने के कारण कई शहरों में महामारी फैली है और सैकड़ों लोगों की जानें तक गई हैं। इन समस्याओं को देखते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने सन् 2000 में बर्मन कमेटी का गठन किया। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि, 'ठोस कचरा प्रबंधन में मज़दूरों की भूमिका शरीर में रीढ़ की हड्डी के समान है। इनके मुफ्त सहयोग से कुल ठोस कचरे में से करीब 15 से 20 प्रतिशत प्रतिदिन कचरे की छंटाई हो जाती है। इस सेवा से नगरपालिका रोज़ाना लाखों रुपयों की बचत करती है। इसलिए कचरा चुनने वाले असंगठित क्षेत्र के कामगारों को काम से बेदखल नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही कचरा प्रबंधन के लिए बनाई जाने वाली योजनाओं में इन मज़दूरों की भागीदारी अहम है। ठोस कचरा प्रबंधन का काम स्वास्थ्य व पर्यावरण के लिहाज़ से भी बेहद ज़रूरी है।'

इस बात की पुष्टि सरकार के कई अन्य कमेटियां भी की है जैसे बजाज कमेटी, द्वितीय लेबर कमीशन इत्यादि। बर्मन कमेटी के सुझावों के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने ठोस कचरा प्रबंधन अधिनियम बनाया।

दिल्ली में करीब 3.5 लाख लोगों की जीविका कचरा व्यवसाय से चलती है। कूड़े के बारे में एक आकलन यह है कि करीब 80 प्रतिशत कूड़ा दोबारा उपयोग में लाया जा

सकता है। 50 प्रतिशत कूड़ा ऐसा होता है जिसको जैविक खाद या बायो गैस में तब्दील किया जा सकता है। लगभग 30 प्रतिशत कूड़े को पुनर्चक्रित किया जा सकता है। मात्र 20 प्रतिशत कूड़ा ही है जिसको लैंडफिल में पहुंचाने की आवश्यकता होती है। इस नीति को आगे बढ़ाए जाने पर पर्यावरण की रक्षा व स्वच्छता की गारंटी तो होगी ही साथ ही कूड़ा चुनने वाले मज़दूरों को जीविकापार्जन की गारंटी भी दी जा सकेगी।

कचरा चुनने वाले मज़दूरों में एक बड़ा हिस्सा महिलाएं व बच्चों का है। पूरे वर्कफोर्स में 40 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं का है जो सबसे अधिक प्रताड़ना व अपमान सहने को मजबूर है। भारतीय समाज में महिलाएं रिक्शा-ठेला नहीं चलाती हैं लेकिन कचरा व्यवसाय से जुड़ी महिलाएं सब काम करती हैं। जहां पर खतरनाक धातु हो वहां महिलाओं विशेषतौर पर गर्भवती महिलाओं को जाना मना है। कचरा व्यवसाय में कार्यरत महिलाओं के पास कोई विकल्प नहीं है। कचरे के ढेर में पारा व लेड जैसे खतरनाक रसायन, पदार्थ मिलते हैं। इनसे औरतों के स्वास्थ्य को काफी नुकसान पहुंचता है। लैंडफिल में लगातार आग जलने के कारण रसायन गैस पैदा होती है जिससे औरतों की प्रजनन क्षमता खत्म हो जाती है।

दिल्ली में तीन नगर निकाय हैं — दिल्ली नगर निगम (एमसीडी) नई दिल्ली नगरपालिका परिषद् (एनडीएमसी) और दिल्ली कैंटोनमेंट बोर्ड (डीसीबी)। सरकारी बेवसाइट पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार लगभग 8000 मैट्रिक टन कूड़ा प्रतिदिन पैदा होता है। लेकिन ये आंकड़े उस कूड़े के हैं जिसका नगर निकाय संग्रहित करके लैंडफिल पहुंचाती है। नगर निकायों के पास कचरे का वज़न करने की सुविधा लैंडफिल साइट पर ही उपलब्ध होती है। लेकिन हकीकत में कचरे की मात्रा इससे कहीं अधिक है। कचरा चुनने वाले मज़दूर द्वारा लैंडफिल तक कचरा पहुंचने के पहले ही उसकी छंटाई कर लेते हैं।

कूड़ा प्रबंधन की प्रमुख ज़िम्मेदारी नगरपालिका की है। नगर पालिका ने इस काम को सस्ते व सरल तरीके से निपटाने के लिए इसका निजीकरण कर दिया है। कचरा उठाने का ठेका निजी ठेकेदारों को दे दिया जाता है जो दिहाड़ी मज़दूरों के ज़रिए घरों व सड़कों से कूड़ा एकत्रित करते हैं। इन मज़दूरों को बहुत कम वेतन दिया जाता है और ठेकेदारों का मकसद केवल मुनाफ़ा कमाना ही होता है। नगरपालिका नागरिकों को बता रही है कि कूड़े से बिजली का उत्पादन किया जाएगा। पर नागरिकों को यह नहीं बताया जा रहा है कि इस प्रयोग की विधि इतनी नुकसानदेय है कि विश्वस्तर पर इसे रद्द कर दिया गया है। सन् 1990 में दिल्ली के तिमारपुर क्षेत्र में ऐसी परियोजना लगाई गई थी जिससे होने वाले नुकसान के कारण इसे बंद कर देना पड़ा। यहां स्थापित ईकाई से एक यूनिट बिजली भी पैदा नहीं की जा सकी।

अनौपचारिक क्षेत्र की समस्या

परंपरागत तरीके से कचरा प्रबंधन के काम में असंगठित क्षेत्र जुड़ा हुआ है। परन्तु मुनाफ़े के लालच में नगरपालिका ने निजी कंपनियों को इस कार्य क्षेत्र में सीधे प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी है। आज दिल्ली के अस्सी प्रतिशत इलाके में निजी कार्पोरेट का कब्ज़ा है जो असंगठित क्षेत्र कामगारों को इस काम से अलग कर रहे हैं।

अखिल भारतीय कबाड़ी मज़दूर महासंघ द्वारा किए सर्वेक्षण से यह पता चला है कि निजी कंपनियों को असंगठित क्षेत्र से बाहर करने के पीछे क्या कारण है। एनडीएमसी क्षेत्र से रोज़ाना अस्सी टन सूखा कूड़ा निकलता है जो सूची से बाहर है। इस कूड़े की प्रतिवर्ष कीमत चौदह करोड़ चालीस लाख है। इसके अलावा कंपनियों की लैंडफिल तक कूड़ा पहुंचाने के लिए रोज़ाना 511 रुपए प्रति टन खर्चा दिया जाता है। ढाई सौ टन कूड़ा रोज़ निकलता है जिसका सालाना व्यय चार करोड़ उनसठ लाख रुपए होता है।

कंपनियां चाहती हैं कि एनडीएमसी क्षेत्र से निकलने वाले कूड़े पर भी उनका एकाधिकार हो और प्रतिवर्ष चौदह करोड़ चालीस लाख का मुनाफा उन तक पहुंच जाए। इस सूखे कूड़े की छंटाई असंगठित क्षेत्र के मज़दूर करते आए हैं। निजीकरण के चलते कंपनियां व्यवसायिक क्षेत्र के हर खत्ते से कचरे की छंटाई के लिए मज़दूरों से तीन हज़ार से पन्द्रह हज़ार मासिक रुपए वसूल कर रही है। कंपनियां पुनर्चक्रण योग्य माल भी अपने पास रख लेती हैं जिससे उनका मुनाफ़ा ज़्यादा से ज़्यादा हो सके।

इस मुद्दे का एक दूसरा पहलू भी है जो मज़दूरों के लिए

हितकारी है। यदि इस सारे कूड़े पर मज़दूरों का हक़ हो तो गीले कूड़े की खाद बनाई जा सकती है। एक साल में लगभग छः करोड़ बारह लाख किलो खाद का निर्माण होने पर मज़दूरों को अच्छी आर्थिक आमदनी होगी।

एनडीएमसी के सामने इस समस्या के निपटारे के लिए दो विकल्प हैं। पहला कंपनी को 4.59 करोड़ रुपए सालाना देकर 250 टन कूड़े का निपटारा किया जाए। दूसरा मज़दूरों के सहयोग से 80 टन कूड़े का पुनर्चक्रण और 170 टन कूड़े की खाद बनाई जाए। ऐसा करने से सिर्फ़ 70 टन कचरा लैंडफिल पहुंचाने की आवश्यकता रहेगी। ऐसा करने पर 3.62 करोड़ रुपयों की बचत हो सकती है।

दिल्ली में सरकारी आंकड़ों के अनुसार 3.5 लाख लोगों की जीविका कचरे की छंटाई के व्यवसाय से चलती है। सवाल यह है कि इनके जीविका के साधन की सुरक्षा कैसे हो? इसके लिए मज़दूरों को मुख्यतः तीन ज़रूरतों की आवश्यकता है। पहली, कामगार के रूप में पहचान जिससे मज़दूरों को पुलिस और निगम अधिकारियों से बचाव मिले। दूसरी, कूड़े के ऊपर अधिकार जिससे काम करने में दिक्कत न हो और कमाई अच्छी रहे, और तीसरी कूड़ा बीनने के लिए नियत जगह जहां कूड़ा एकत्रित किया जा सके और माल की हिफाज़त हो सके। इसके साथ ही इस पूरे व्यवसाय को कानूनी वैधता प्रदान की जाए ताकि पुनर्चक्रण का काम सुरक्षा और सफ़ाई के साथ हो सके और पर्यावरण को हानि न पहुंचे।

मज़दूरों के द्वारा प्रस्तावित व्यवस्थागत मॉडल

शहरी कचरे के संग्रह, छंटाई, पुनर्चक्रण, ढुलाई, बिक्री और निस्तारण की संभावित वैकल्पिक व्यवस्था के लिए मज़दूरों ने निम्न प्रस्ताव सुझाया है। यह व्यवस्था आवासीय क्षेत्र में प्रति 1,000 आबादी पर एक ढलाव और प्रति व्यक्ति 0.6 किलो कचरा के डीडीए के नियम पर आधारित है। औसत के स्तर पर देखें तो एक ढलाव में रोज़ लगभग 500-600 किलो कचरा आएगा। अगर ये मान लिया जाए कि साइकिल पर घूम-घूम कर कचरा जमा करने वाले एक बार में 50-100 किलो तक छंटा हुआ कचरा इकट्ठा करके ले जा सकते हैं तो हर ढलाव के लिए घर-घर कचरा संग्रह और छंटाई के लिए 6-10 कचरा बीनने वालों की व्यवस्था होनी चाहिए।

फ़ोटोः शशि भूषण पंडित

जैविक कचरा इकट्ठा करती हुई महिला

ढलाव से जो कचरा निकलता है उसमें से प्रति 500 किलोग्राम कचरे में से 250 किलोग्राम जैविक कचरा होता है और 150 किलोग्राम पुनर्चक्रण योग्य कचरा होता है। कचरा बीनने वालों के संगठनों को इस बात का लाभ मिलना चाहिए कि वे इस कचरे को कम्पोस्टिंग पिट या छंटाई स्थलों पर ले जाएं। ये स्थान इतनी दूरी पर होने चाहिए कि वहां साइकिल या साइकिल रिक्शा से आसानी से जाया जा सके। प्रत्येक छंटाई स्थल पर 10-20 ढलावों की व्यवस्था होनी चाहिए। कम्पोस्टिंग पिट से जो स्वाद पैदा होगी उसे हर हफ्ते साइकिल या साइकिल रिक्शा के जरिए स्थानीय बाज़ारों में ले जाया जा सकता है। इसकी कुछ मात्रा एमसीडी भी इस्तेमाल कर सकती है और बाकी को पार्कों और बगीचों के लिए बेचा जा सकता है। गोदामों में से योग्य पदार्थों को हर हफ्ते छोटे एमटीवी वाहनों के ज़रिए कबाड़ी और जंक डीलर संगठनों द्वारा बड़े कबाड़ियों और समुदाय स्तर की बड़ी इकाइयों तक पहुंचाने की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

इसके बाद ढलावों में प्रति 500 किलोग्राम कचरे में से जो 100 किलोग्राम कचरा बचता है उसको किसी केंद्रीय स्थान पर ले जाया जा सकता है जहां से निजी सेनेटरी ट्रक इस कचरे को उठाकर लैंडफिल ले जाकर फेंक सकते हैं। ये लैंडफिल समुदाय या ज़िला या ज़ोन स्तर पर हो सकते हैं। इस तरह की एकीकृत व्यवस्था से न केवल परिवहन लागतों में काफी कमी आती है बल्कि लैंडफिल क्षेत्रफल की ज़रूरत भी कम हो जाएगी बशर्ते निजी पक्षों को पुनर्चक्रण योग्य और जैविक पदार्थों पर अधिकार न दिया जाए और उन्हें इस व्यवस्था से बाहर रखा जाए।

शशि भूषण पंडित *'हरित रीसाइक्लर्स' संगठन के कार्यकर्ता हैं।*

अभियान

बदलाव के लिए अगुवाई

सरिता बलोनी

परिचय

जागोरी, पिछले 6 से सालों से बवाना और खादर बस्ती में समुदाय की महिलाओं, युवाओं व बच्चों के साथ उनके अधिकारों पर काम कर रही है। 2004 से हमारे जुड़ाव के दौरान हमने महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा के खिलाफ़, युवा लड़के एवं लड़कियों के अधिकार के मुद्दों, बुनियादी नागरिक हक़ों जैसे राशन कार्ड व भोजन के अधिकार, शिक्षा एवं अन्य बुनियादी ज़रूरतों तक पहुंच बनाने पर काम किया है। अपने काम के दौरान बवाना और खादर में कई ऐसी महिलाओं से मुलाकात रिश्तों में बदल गई हैं। किन-किन महिलाओं का नाम लूं? समझ से परे है। परन्तु इनमें कुछ के साथ में व्यक्तिगत रूप से बात कर पाई हूं। ये चार महिलाएं एकल हैं। कोई पति के साथ रहते हुए अकेली है तो कोई पति के देहांत के बाद अकेली है। परन्तु ज़िम्मेदारी निभाने में कोई भी उन्नीस नहीं है। सभी बीस के बराबर काम करती हैं और अपनी जीवन नैया पार लगाने में लगी हैं। असल जिंदगी में चारों ही विस्थापन की मारी हैं और अधिकारों तक पहुंच बनाने में हाथापाई कर रही हैं। बवाना में 14 ब्लॉक है जिसमें 12 ब्लॉक में रिहाईश है। लगभग सवा लाख आबादी की आधी आवाम महिलाओं की है। ये बातें सिर्फ़ उन सभी हाशिये पर रहने वाली महिलाओं की बातें हैं जिनकी आवाज़ें घर से बाहर भी नहीं पहुंच पाती हैं। हालांकि आज जगह-जगह नारी सशक्तिकरण की बात चल रही है। कहीं ना कहीं सरकार भी कई योजनाएं ला रही है। परन्तु योजना सिर्फ़ कागज़ तक ही सीमित रही है।

हम सबला के माध्यम से इन महिलाओं का परिचय आपके साथ करा रही हूं। हमने इनके साथ पानी व स्वच्छता से जुड़ी समस्याओं व उनके हल के बारे में बातचीत की।

मुश्तर

मुश्तर तीन बेटियों की मां है और सन् 2004 में यमुना पुश्ता से विस्थापित होकर बवाना जेजे कॉलोनी में रह रही है। यह 55 वर्षीय एकल मुस्लिम महिला बकरकसाब पठान जाति से संबंध रखती हैं। करीब चार-पांच साल पहले पति के देहांत के उपरांत तीनों बेटियों की पालन पोषण की ज़िम्मेदारी वह बखूबी निभा रही है। मुश्तर घर-घर जाकर मीट और सब्ज़ी बेचने का काम करती है। सुबह चार बजे के आस-पास हफ्ते में तीन चार दिन सब्ज़ी और मीट खरीदने के लिए पुरानी दिल्ली जाती है। इन पानी, नाली, कूड़ा निपादन और शौचालय तक पहुंच के संदर्भ में सुरक्षा से जुड़े मुद्दे पर मुश्तर से बातचीत के दौरान निम्न बातें सामने आईं। मुश्तर ने बताया कि लड़के छेड़छाड़ करते हैं। अंधेरे में छेड़े जाने पर पहचान नहीं हो पाती है और लड़कियों के साथ हिंसा की संभावना बढ़ जाती है। लड़के इस बात का फायदा बखूबी उठाते हैं। कभी वो कोहनी मारकर निकल जाते हैं तो कभी छाती में हाथ मारकर धक्का देते हैं। मुश्तर ने बताया कि जिन महिलाओं को आर्थिक तंगी होती है वो महिलाएं और लड़कियां ज़्यादातर दिन हो या रात खुले में शौच के लिए जाती हैं जिससे असुविधा होती है। जब लड़कियां शौच के लिए बाहर एक खुले मैदान पर जाती हैं तो उनके पीछे-पीछे लड़के भी चले जाते

नफ़ीसा (सफ़ेद सूट/पीला दुपट्टा), मुश्तर (सफ़ेद सूट), सत्यभामा (साड़ी पहने हुए दाहिने कोने में) महिला मीटिंग के दौरान।

फ़ोटो: सरिता बलोनी

हैं। ऐसे में वो कुछ करे या न करे पर लड़कियों पर एक मानसिक दबाव बन जाता है कि कहीं कुछ हो ना जाए। मुश्तर मानती हैं कि लड़कियों और महिलाओं के साथ छेड़खानी बवाना में आम बात हो गई है। डर की वजह से कई बार शौच को रोकना पड़ता है। इज़्ज़त सबको प्यारी है, कई बार औरतें और लड़कियां कागज और अख़बार, थैली में शौच निव्रत होती हैं और समय देखकर कूड़े में फेंक देती हैं। बिजली चले जाने पर पानी नहीं मिल पाता है। शौचालय में नहाते समय कई बार बिजली चली जाती है तो कई बार महिलाओं को साबुन लगे शरीर में नग्न अवस्था में ही रहना पड़ता है। जिसके पास पैसा होता है वो पानी जेनरेटर के द्वारा चलवा लेता है। मुश्तर के घर में निजी स्नानागार रूपी ढांचा है जिसे मूत्रालय के तौर पर भी इस्तेमाल किया जाता है। मुश्तर को लगता है कि *"लड़कियों की अपेक्षा बुजुर्ग महिलाओं के साथ हिंसा होने की संभावना कम है।"*

नफीसा

नफीसा की उम्र 59-60 वर्ष है और वह सैफी जाति की है। पति का देहांत 20 साल पहले हो गया था। एक बेटी आठवीं में पढ़ रही है और दूसरी बेटी ने आठवीं के बाद पढ़ाई छोड़ दी है। पिछले आठ महीने पहले तक नफीसा अपने छोटे बेटे और बहू के घर में रह रही थी। अब उसका अपना घर बन गया है जहां नफीसा अपनी दो कुंवारी बेटियों के साथ रह रही है। नफीसा का कहना था कि बिजली चली जाने के कारण पानी नहीं मिलता। पानी के लिए काफी लम्बी लाईन लगी होती है इसलिए काफी समय पानी भरने में ही गुज़र जाता है। पानी आने पर लाईन में नंबर लगाना पड़ता है। जो औरत तेज़ होती है वो पहले पानी भर लेती है जो सीधी होती है वो बाद में पानी भरती है। अगर सरकारी नल ज़्यादा हो जाएं तो शायद लड़ाई ना हो और लोगों का समय भी बचे। पानी कच्चा है और महक आती है जिसके कारण अक्सर पेट ख़राब रहता है। सुबह पांच बजे तक शौचालय नहीं खुलता है। बहुत लंबी कतार होती है और अगर बिजली चली जाए तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। कई बार पेट में दर्द होने पर बार-बार शौच के लिए जाना होता है। पहले खुले में शौच जाने के लिए काफी जगह थी परन्तु अब ये जगह या तो अनाधिकृत झुग्गियों ने ले ली है या फिर वहां निर्माण का काम चल रहा है। कई बार औरतों के शौचालयों में बिजली ना रहने पर पानी बंद हो जाता है तो पुरुषों वाली साईड से पानी लाना पड़ जाता है। उस समय डर लगता है। शौचालयवाला वहां से पानी लाकर नहीं देता है। घर के पास वाली नालियां लोग खुद साफ़ करते हैं पर पानी फिर वापिस आ जाता है। बारिशों में नाली का पानी बाहर बहता है। नफीसा का कहना है कि चूंकि *"औरत का काम सफ़ाई का है इसलिए सफ़ाई कर्मचारी भी औरतें हों तो फ़र्क़ पड़ सकता है। इसलिए उनका दफ़्तरों में होना ज़रूरी है।"*

इंदिरा देवी

साठ वर्ष की इंदिरा देवी नारायणा से विस्थापित होकर पिछले तीन चार सालों से बवाना जे जे कालोनी में रह रही हैं। इंदिरा के दोनों बेटों और एक बेटी की शादी हो गई है। पति मानसिक रूप से बीमार हैं व पिछले एक साल से लापता हैं। इंदिरा फैक्टरी में काम कर अपना गुज़र-बसर कर रही है। हमारे पूछने पर कि उसे पानी क्यों नहीं मिलता है इंदिरा देवी का कहना था कि जब बिजली नहीं होगी तो पानी कहां से मिलेगा। पानी मोटर से चलता है इसलिए बिजली का सबसे ज़्यादा असर पानी पर पड़ता है। सरकारी नल का पानी खारा व कच्चा है। अगर पानी या शौचालय के लिए जाना हो तो महिलाओं की स्थिति खराब है। अंधेरे में सर्दियों में अकेले निकलना मुश्किल होता है। पानी भरना भी ज़रूरी होता है क्योंकि उसके बाद फैक्टरी के लिए निकलना होता है। सरकारी नलों पर बहुत झगड़ा होता रहता है। एक रुपया देने के बाद भी शौचालय गंदा रहता है।

शौचालय का पानी नहाने योग्य नहीं है। कूड़े की गंदगी और बरसात में पानी भर जाने के कारण मच्छर पैदा होते हैं जिसकी वजह से बुखार हो जाता है। सफ़ेद पानी व पेशाब में जलन होती है। कूड़ा फेंकने के लिए लोग पार्क में जाते हैं। इंदिरा देवी का मानना है कि *"कूड़ा डालने के लिए कूड़ेदान होने से फायदा होगा। राशन कार्ड भी अभी तक नहीं बने है व इलेक्शन कार्ड के*

फ़ोटो: सरिता बलोनी

माइक पर बोलती हुई इंदिरा

लिए फार्म भर दिए हैं परन्तु इसके बनने के बारे में कोई जानकारी नहीं है।"

सत्यमाभा

एकल बुजुर्ग महिला सत्यभामा यमुना पुश्ता से विस्थापित होकर बवाना जे जे कालोनी में पिछले पांच-छः सालों से रह रही हैं। वह एक बेटे के साथ रहती हैं। बवाना की समस्याओं पर बातचीत करने पर सत्यभामा ने बताया कि बिजली जाने के बाद पानी नहीं मिलता। पानी भरने दूसरे इलाके में जाना पड़ता है। पानी को लेकर झगड़ा होता रहता है। कई औरतें नलों की टूटियां तोड़कर अपने घर ले जाती हैं। तब सब मिलकर अपने पल्ले से पैसा लगाकर नल ठीक करवाते हैं। मोटर का पानी पीने व नहाने के लिए ठीक है। जब लड़ाई बढ़ जाती है तो थाना पुलिस हो जाती है। गंदगी के कारण मच्छर फैलते हैं। यहां पर सफ़ाई वाले भी नहीं आते हैं। सब्ज़ी बाज़ार में गंदगी रहती है। जब हवा चलती है तो कूड़ा इधर-उधर हो जाता है और इस वजह से गंदगी होती है। शौचालय रात के ग्यारह बजे बंद होता है और सुबह चार बजे खुलता है। कई लोगों ने अपने शौचालय बना लिये हैं जो अपने परिवार के लिए इस्तेमाल करते हैं। गंदे शौचालय की वजह से लोग शौचालय इस्तेमाल करना नहीं चाहते और खुले मैदानों में जाते हैं। परन्तु अब बाय पास वाली सड़क पक्की हो गई है। गाड़ियां चलने लगी है जिसके कारण दोपहर व रात में बाहर नहीं जा सकते। शर्म आती है और डर भी लगता है। सत्यभामा के अनुसार *"अगर सभी लोग सफ़ाई रखने का मन बना लें तो गंदगी नहीं रहेगी। इस इलाके में एक बगीचा भी हो तो अच्छा रहेगा। बिजली चली जाने पर हम वहां आराम से बैठ सकेंगे।"*

औरतों की बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार की बेरूखी के कारण सार्वजनिक सुविधाएं लगभग नगण्य हैं। पर ऐसा भी नहीं है कि महिलाएं हाथ पर हाथ धरे बैठी हैं। अपने स्तर पर अपनी इस लड़ाई को सभी ने जारी रखा हुआ है। महिलाएं इस जद्दोज़ेहद में लगी हैं कि कैसे अपने अधिकारों को ले पाएं। महिलाओं ने हिंसा व खाने के अधिकार से पहचाना, समझा और समझाया कि कैसे जल सफ़ाई और स्वच्छता का अभाव तथा आधारभूत सुविधाओं की कमी जीवन में एक असुरक्षा पैदा करती है। नालियों का खराब डिज़ाइन, अनियमित देखरेख और पानी के बाहर बिखरने, गीले कूड़े व मिट्टी के सड़क पर फैले रहने, बिजली की कमी जैसी कुछ मूलभूत ज़रूरतें महिलाओं की सुरक्षा व गरिमा पर असर डालने वाला गहन मुद्दा है। कुछ महिलाएं व युवा लड़के व लड़कियां अगुवाई ले रहे हैं और नेताओं के रूप में सामने आ रहे हैं। औरतें अपने हुनर विकास के अलावा साझेदारी की ओर कदम बढ़ाकर निगरानी और सुरक्षा जांच में अपनी अहम भूमिकाएं अदा कर रही हैं। साक्ष्य और तथ्यों को पहचानने के अलावा उसका निरीक्षण, अवलोकन करने की क्षमता में महिलाओं का तीव्रता से विकास हो रहा है। महिलाओं ने रिश्ता बनाया है साझेदारी से काम करने के लिए और सफ़ाई कर्मचारियों के साथ आमने-सामने बात करके मुद्दों का हल निकालने के लिए। आज महिलाएं अपने हिसाब से बता रही हैं कि नाली या नाले की रुकावट की वजह क्या है, शौचालय का डिजाइन कैसा होना चाहिए? कौन सा मॉडल बेहतर है? कौन सी जगह है जो उसके लिए सुरक्षित है या नहीं? वे सुरक्षित माहौल को कायम रखने में उनकी अपनी ज़िम्मेदारी के बारे में सोचती भी हैं और भागीदारी भी ले रही हैं। इन मुद्दे, चुनौतियां और उनसे निपटने के लिए सिर्फ़ बीज भर से काम नहीं हो पाएगा। कहीं ना कहीं ये एक सोच उभर कर आ रही है कि अभी तो पौधा बनेगा और पनपने के बाद पेड़ और फल के रूप में सामने आएगा जिसके लिए महिलाएं और युवा मुस्तैदी से लगे हुए हैं।

सरिता बलोनी *जागोरी की एक्शन रिसर्च टीम से जुड़ी हैं।*

आपबीती

निश्चय

चैताली हालदार

आज बहुत बारिश हो रही है। रास्ता कीचड़ से भरा है, चलना मुश्किल है। बिजली भी नहीं है। मेहर काम से लौट रही है। उसकी धीमी चाल और चेहरे की झुर्रियों में सारे दिन की थकान सिमट आई है।

कभी-कभी मेहर को अपनी ज़िंदगी पर बहुत गुस्सा आता है। काम जैसे खत्म ही नहीं होता। हर पल मर-मर कर जीना! वह हताश होकर खड़ी हो जाती है।

"क्या हुआ मेहर! खड़ी क्यों हो गई? पैर जल्दी चला। इरफान के पापा के घर आने का टैम हो रहा है। आकर देखेगा कि मैं अभी तक वापस नहीं पहुंची तो हंगामा खड़ा कर देगा", रुखसार बाजी की आवाज़ कान में पहुंचते ही मेहर चौंकी।

सच में, रुखसार बाजी को दाद देनी पड़ेगी। इतनी मुश्किलों के बावजूद कभी मायूस नहीं होती। लगातार मशीन की तरह चलती रहती है। आप सोच रहे होंगे चौबीस घंटे कोई कैसे खट सकता है? रात में तो ज़रूर आराम से सोती होगी। पर आराम इस औरत के नसीब में कहां है। आठ-आठ बच्चों को पालना, सभी की फरमाईशें पूरी करना। आधा पेट खाना पति की मार-पिटाई और ऊपर से उधार की समस्या। बेटियों के शादी का खर्च सम्भालने के लिये उधार, बेटों की पढ़ाई के लिये उधार, घर पक्का बनाने के लिये उधार, पति की नशे के कारण उधार ..... आज जब थोड़ा आराम करने का उम्र आयी है तब फैक्टरी में काम करने के लिए जाना पड़ रहा है। आखिर उधार भी चुकाना है न।

मेहर ने प्यार से रुखसार बाजी को देखा। सोचा जवानी में बाजी कितनी सुंदर रही होंगी। प्यार और देखरेख की कमी ने इस पैंतालीस साल की औरत को साठ साल की बुढ़िया बना दिया है। चिढ़चिढ़ी भी बहुत हो गई है। पानी की लाईन में अगर बाजी साथ हो तो पानी जल्दी मिल जाता है। बाजी कहती है, यह जंगल है। जिसकी ताकत ज़्यादा उसी का ही राज चलता है। चुप रहोगे तो चारों तरफ से लोग तुम्हारे ऊपर धौंस जमाने लगेंगे।

"चल घर जा। कल सुबह जल्दी तैयार हो जाना। आज लेट हो गए थे। फालतू बस में पैसे लगाने पड़े। कल पैदल जाएंगे। नहीं तो महीने का हिसाब गड़बड़ हो जाएगा।" बाजी की आवाज़ में गुस्से के साथ प्यार और फ्रिक भी थी।

"हां कल मैं जल्दी तैयार हो जाऊंगी।" विश्वास दिलाती है मेहर।

घर के दरवाज़े तक पहुंचते ही मेहर को पता लग गया कि आज की रात साधारण रातों जैसी नहीं है। घर में नाली का पानी घुस गया है। मेहर की तीसरी बेटी असगरी घर से पानी निकालकर बाहर फेंक रही है।। अभी तक चूल्हा नहीं जला। आमतौर पर मेहर के घर आते-आते सब्ज़ी कट जाती है व आटा गूंध जाता है।

"अम्मा देखो ना क्या हो गया! फिर से घर में गंदा पानी घुस गया है।"

मेहर को गुस्सा आ रहा है। एक तो नाली भरी हुई है, ऊपर से हरामज़ादी साजदा सारा कूड़ा नाली में ही फेंकती है।

"यहां तो लोगों को रहने का कोई तरीका ही नहीं है। न खुद साफ़ रहना जानते हैं और न दूसरे को ठीक से जीने देते हैं।" ऊंची आवाज़ में दरवाज़े के सामने खड़ी होकर मेहर चिल्लाई।

"अच्छा! तेरी बेटियों को पूछ कि वह कहां फेंकती है कूड़ा? तेरे दरवाज़े के सामने जो वह चिप्स का लिफाफा पड़ा है वह किसने फेंका? पहले अपना घर सम्भाल फिर दूसरों को सिखाना।" साजदा अपने घर के अंदर से चिल्लाई।

"तुझे क्यों बुरा लग रहा है? मैंने तुझे कुछ कहा क्या? जिसके मन में चोर होता है वह ही अपने आपको बचाने की कोशिश करता है।" जबाव का इंतज़ार न करके मेहर घर के अंदर चली गई।

साजदा बोलती चली गयी। मेहर ने कोई जबाव नहीं

दिया। शनिवार को संस्था वाली दीदी आएगी। तब उन्हें सब कुछ बताऊंगी। मन ही मन में तय किया मेहर ने।

रोज़ ही गली में कुछ न कुछ होता है। लड़ाई झगड़ा तो लगा ही रहता है। कभी पानी की लाईन में, तो कभी शौचालय में, कभी घर के अंदर, तो कभी घर के बाहर। झगड़ा करना मेहर को बिल्कुल पसंद नहीं है। पर यहां रहने के लिये झगड़ा तो करना ही पड़ता है। नहीं तो ज़िंदगी नरक बन जाएगी।

यह सोचकर तो गांव से शहर नहीं आयी थी मेहर। पहले पहले सब कुछ बहुत अजीब लगता था। यह शौचालय की लाईन, पानी की लाईन, राशन की लाईन, बच्चों को स्कूल में दाखिल करवाने के लिये भागा-दौड़ी। हज़ारों झमेले। राशन कार्ड चाहिए तो दफ्तर भागते रहो। अगर मिल गया तो कार्ड काम में आयेगा या नहीं, राशन मिलेगा या नहीं, पता नहीं।

"हज़ारों झंझट हैं। पर एक बात तो है। इन सारे झमेलों से हमें प्यार भी तो है। हम कुछ करते ही नहीं", साजदा बड़बड़ा रही थी।

"तू कब मेरे पीछे-पीछे घर तक आ गई," चिड़कर बोली मेहर।

"पहले मेरी बात का जबाव दे। ऐसा क्या करें कि रोज़ के इस झमेले से छुटकारा मिल जाए?" सवाल किया साजदा ने।

"थोड़ी मुश्किल तो है। पर तुम लोग चाहो तो शायद कुछ समस्याएं कम हो सकती हैं। अगर तुम लोग एक हो जाओ। एक दूसरे का साथ दो तो।" मेहर ने दरवाज़े पर खड़ी दीदी को देखा। फिर साजदा की ओर। उधर साजदा भी जैसे कुछ निश्चय कर चुकी थी। दोनों ने आंखों ही आंखों में जैसे कुछ करने का इरादा कर लिया था।

चैताली हालदार *जागोरी की एक्शन रिसर्च टीम से जुड़ी हैं।*

खुरदुरी हथेलियां

अनामिका

हालांकि ज्योतिषी नहीं मैं,
दानवीर कर्ण भी नहीं हूं—
पर देखी हैं मैंने
फैलती-सिकुड़ती हथेलियां कई तरह की!
हाथों में हाथ लिए और दिए हैं कितनी बार!
जानती हूं ये भी—
दुनिया का सबसे मज़बूत और नाज़ुक पुल होते हैं
दो लोगों के बढ़कर मिले हुए हाथ!
धुर बचपन में रेडियो से
पूछा करते थे जब मुहम्मद रफी—
'नन्हें-मुन्ने बच्चे, तेरी मुट्ठी में क्या है?'
'मुट्ठी में है तकदीर देश की'—सुनने के पहले ही
पीली लेमनचूस से चटाचट अपनी नन्ही हथेली
लगते थे जेब में छुपाने हम!
एक उमर जीने के बाद उड़े, हाथों के तोते
छोड़कर हथेली पर
उड़ने के पहले की सिहरन से थर-थर
धानी-हरे रोएं!

कल एक बरतन-पोंछे वाले
जूने से छिदी हुई,
पानी की रुलाई,
सुन्दर-सी, खुरदरी हथेली
तपते हुए मेरे माथे पर
ठंडी पट्टी-सी उतर आयी!
मारे सुख के मैं
सिहर ही गई!
फिर पानी की रुलायी
उसकी वे उंगलियां उठाकर
देर तक सोचती रही—
निचली सतह का तरफदार,
आबदार, सीधा-सरल होने के बावजूद
पानी रुला पाता है कैसे भला
मांस-मज्जा
दुनिया की सबसे पानीदार,
नमकीन, कामगार हथेली की?

जल खण्ड के लिए जेंडर अनुकूल बजट

परिचय

पिछले 30 वर्षों में जल खण्ड में महिलाओं के सशक्तिकरण, महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता, आर्थिक अधिकारों, मानवाधिकारों, और संसाधनों तक पहुंच तथा निर्णय लेने की शक्ति में बराबरी और निष्पक्षता के लिए असंख्य सभाएं, घोषणाएं, कार्यवाही योजनाएं और वादे किए गये हैं।

जल संस्थानों और नीतियों में अन्तरानुभागीय विश्लेषण का समावेश करते हुए जेंडर समानता की शुरूआत की गयी है, पर यह धीमी गति से हो रहा है। इसके अतिरिक्त, पिछले दस से बीस वर्षों में नयी समावेशित और न्यायसंगत नीतियों का क्रियान्वयन कई कारकों से प्रभावित हुआ है। इसमें राजनैतिक इच्छा और वचनबद्धता की कमी, जल संसाधन प्रबंधन में एक सम्मिलित नज़रिए तथा महिलाओं और लड़कियों के साथ सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक भेदभाव शामिल हैं।

जेंडर अनुकूल बजट पहल एक ऐसा मजबूत साधन है जो सम्मेलनों, नीतियों और वादों को लागू करने में मदद करता है।

जेंडर अनुकूल बजट पहल वृहत-आर्थिक नीतियों और बजटों में जेंडर संवेदनशीलता की कमी की पहचान हेतु विकसित किए गए थे। प्रथम जेंडर-अनुकूल बजट आस्ट्रेलिया में 1984 में प्रस्तुत किया गया था। वृहत-आर्थिक नीतियां और बजट महिलाओं के भुगतान रहित श्रम को स्वीकार नहीं करते हैं और इसलिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में पुरुषों के योगदान की तुलना में महिलाओं के योगदान को जगह व कीमत नहीं मिलती। किसी भी देश की विकास प्राथमिकताओं के लिए राष्ट्रीय बजट मुख्य दस्तावेज़ होता है। यदि सरकार का राष्ट्रीय बजट जेंडर-संवेदी नहीं है तो यह राष्ट्रीय विकास प्रयासों में महिलाओं की भूमिकाओं और योगदानों को पहचान नहीं पाता और अतः महिलाओं की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को भी पूरा नहीं करता है। सभी देशों में महिलाओं और पुरुष विभिन्न भूमिकाओं और उत्तरदायित्वों को निभाते हैं और संसाधन और निर्णय पर उनकी पहुंच और नियंत्रण असमान होती हैं, अतः बजट उन पर विभिन्न प्रकार से प्रभाव डालते हैं।

जेंडर अनुकूल बजट पहल

जेंडर अनुकूल बजट पहल नीतियों, कर-निर्धारण, राजस्व, व्यय और घाटों का लैंगिक नज़रिए से विश्लेषण करते हैं। ये वे साधन हैं जिससे यह मूल्यांकन करने में मदद मिलती है कि सरकारी नीतियां और कार्यक्रम महिलाओं और पुरुषों तथा लड़कियों और लड़कों पर विविध और असमान प्रभाव डालेंगे या नहीं। महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग-अलग बजट बनाने के बारे में नहीं हैं। वे बजट प्राथमिकताओं के जेंडर-संवेदी विश्लेषण में मदद करते हैं। यह विश्लेषण बजट में किए जाने वाले संशोधनों का आधार बनता है।

इसके अतिरिक्त एक सम्पूर्ण जेंडर बजट विश्लेषण केवल लैंगिक सरोकारों या महिलाओं से संबंधित बजट के हिस्सों पर ही केंद्रित नहीं होती बल्कि यह सरकारों के सभी क्षेत्रीय प्रावधानों को महिलाओं, पुरुषों, लड़कियों व लड़कों पर उनके विविध प्रभावों के लिए भी जांचती है। यह विश्लेषण थोड़ा आगे जाकर जेंडर आयु समूहों के उप-समूहों पर भी विचार करता है।

अधिकांश *जेंडर अनुकूल बजट पहल* का लक्ष्य सरकारी बजट में परिवर्तन करना होता है परन्तु इसके कई अन्य लाभ भी हैं। यह जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने वित्त और निणर्यों में पारदर्शिता लाने तथा लोकतंत्र को बढ़ावा देना का भी अहम तरीका है। यह सरकारी विभागों, गैर सरकारी संगठनों व अन्य पक्षधरों के उत्तरदायित्व सुधारने और सेवाओं को लक्षित करने की भी अनुमति

देता है। साथ ही यह निश्चित करता है कि मंत्रालय व नगरपालिकाएं अपने चुनाव क्षेत्रों की ज़रूरतों और प्राथमिकताओं के प्रति जवाबदेह हों। *जेंडर अनुकूल बजट पहल* यह भी ध्यान रखती है कि नीतियों को संबंधित बजट निर्धारण के साथ लागू किया जा रहा है। यह अंतर्राष्ट्रीय घोषणाओं के प्रति सरकार की वचनवद्धता के कार्यान्वयन में भी मदद करती है।

जेंडर खण्डों मे जेंडर अनुकूल बजट

जेंडर विश्लेषण के लिए पानी को कार्यसूची में शामिल करने से सतत व समावेशी जल संसाधन विकास और प्रबंधन का दृष्टिकोण विकसित होता है क्योंकि इसमें बजट विश्लेषण के लिए बहु-पक्षीय पक्षधरों से जुड़े तरीके शामिल होते हैं। *जेंडर अनुकूल बजट पहल* की मांग के पीछे मुख्य कारण वरिष्ठ निर्णयकर्त्ताओं और कार्यान्वयन एजेंसियों की गरीब महिलाओं की ज़रूरतों व जल खण्डों में लैंगिक भेदभाव को सम्बोधित करने के सुस्त रवैयों के नतीजतन बढ़ती कुंठा है। तंजानिया का 'जेंडर नेटवर्किंग कार्यक्रम' तंजानिया के राष्ट्रीय बजट का लैंगिक विश्लेषण करते हुए जेंडर अनुकूल बजट पहल की ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए यह टिप्पणी करता है, "राष्ट्रीय बजट राज्य की प्राथमिकताओं का सबसे सच्चा संकेतक है। दुर्लभ संसाधनों के आबंटन की प्रक्रिया सरकार की प्राथमिकताओं को उजागर करते हुए उनके चहेते संघटनों को तब चिन्हित कराती है जब निर्णयकर्त्ताओं पर नीति प्राथमिकताओं के बीच चुनाव करने के लिए दबाव डाला जाता है। जहां नीति व बजट मार्गदर्शक उद्देश्यों के मानक और दिशा निर्धारित करते हैं वहीं बजट राजनैतिक इच्छाशक्ति की वास्तविकता प्रदर्शित करता है।"

जेंडर अनुकूल बजट पहल कौन कर सकता है?

जेंडर अनुकूल बजट पहल के मुख्य पात्र सरकार के विभिन्न स्तर, मंत्रालय और विभागों के साथ-साथ महिला समूह व अन्य नागरिक समाज से जुड़े भागीदार हैं। जिन देशों में यह प्रयोग सफल रहे हैं वहां इस प्रयोग का समन्वय करने का श्रेय संबंधित मंत्रालय, महिला संगठन या गैर सरकारी संगठन अथवा विश्वविद्यालय या शोध केंद्र को जाता है।

जल खण्ड में जेंडर समानता लागू करने के लिए जेंडर अनुकूल बजट पहल

जेंडर अनुकूल बजट पहल के साधन जैसे *जेंडर-असंकलित लाभार्थी मूल्यांकन* पानी व सार्वजनिक सफ़ाई सेवाओं और आबंटित बजट निर्धारण के बीच संबंध का जायज़ा लेते हैं। पानी के निजीकरण के मामले में यह मूल्य नीतियों के प्रभाव तथा स्त्री-पुरुष की आमदनी व सार्वजनिक सेवाओं से उनके संबंध का विश्लेषण करने में भी सहायता करते हैं। यह उन लोगों के लिए बजट पुनर्निधारण की ज़रूरत पर भी ज़ोर देते हैं जिनके पास जल सुविधाएं नहीं पहुंच रही हैं। इस प्रयोग की मदद से गरीब पुरुष-महिलाओं, स्त्री-मुखिया परिवारों, भूमिहीन औरतों व ज़मीन के छोटे से टुकड़े पर स्वामित्व रखने वाले स्त्री-पुरुषों के लिए सेवाओं के अभाव अथवा कमी को भी उजागर किया जा सकता है।

समय प्रयोग पर बजट के प्रभाव का असंकलित विश्लेषण एक ऐसा साधन है जो यह दिखाता है कि किसी काम को पूरा करने में औरतों द्वारा लगाया गया समय जो कि असल में राज्य का दायित्व है, वास्तव में राज्य को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। उदाहरण के लिए महिलाएं अधिकतर सेवाओं में कमी की पूर्ति परिवारों व बच्चों की मूल ज़रूरतों को पूरा करने में अधिक समय लगाकर करती हैं। जब पानी की कमी होती है तब औरतें दूर-दराज़ से पानी लाती हैं, उसके पुनर्चक्रण और संरक्षण के तरीके ढूढ़ती हैं और घरेलू कार्यों को पूरा करने में अधिक वक्त देती हैं। अगर इस समय की कीमत वित्तीय तौर पर आंकी जाए तो राज्य की इस प्राथमिक ज़िम्मेदारी को पूरा करने में औरतों द्वारा लगाया गया समय राज्य के प्रति एक आर्थिक योगदान होता ही है।

एक अन्य लाभदायक साधन है *जेंडर असंकलित सार्वजनिक व्यय लाभ विस्तार विश्लेषण।* प्रायः जल के निजीकरण में पानी व सफ़ाई आधारभूत सुविधाओं को अलग रखा जाता है और इसे मुहैया करने की ज़िम्मेदारी सरकारी ऋण व निवेश पर छोड़ दी जाती है। सरकार के खर्चे का लाभार्थी विश्लेषण सरकारी व्यय के अमीरों के प्रति रूझान को दर्शाता है। गोल्फ कोर्स, स्विमिंग पूल व उद्योग आधारभूत सेवाओं में अधिक पानी का उपयोग करते हैं

जबकि गरीब महिलाएं अपनी सीमित ज़रूरतों और पैसे देने की अक्षमता के कारण कम पानी इस्तेमाल करती हैं।

असंकलित कर विस्तार विश्लेषण की मदद से कर निर्धारण नीतियों का बाज़ार व घरेलू स्तर पर निरीक्षण किया जाता है। घरेलू स्तर पर जल प्रावधान और प्रबंधन संदर्भ में भी स्वच्छता सरकार की ज़िम्मेदारी होती है जिसमें निवेश के लिए राजस्व का इस्तेमाल किया जाता है। बाजार के संदर्भ में अनौपचारिक क्षेत्र व लघु उद्योगों पर मालिकाना हक़ होने के कारण औरतें कर अदा करती हैं जबकि जल आधारभूत सुविधाएं उनकी ज़रूरतों की पूर्ति नहीं करतीं।

कुछ ही *जेंडर अनुकूल बजट पहल* जल खण्ड के अनेक आयामों पर केंद्रित होती हैं। उदाहरण के लिए जेंडर अनुकूल बजट का इस्तेमाल को पानी व स्वच्छता सेवाओं, सिंचाई के लिए पानी तक समान पहुंच या समावेशी जल संसाधन प्रबंधन अर्जित करने के लिए किया जा सकता है। दक्षिण अफ्रीका में इसकी मदद से महिलाओं के लिए अन्य सेवाओं जैसे बिजली के अभाव की बात उठाई गई है। *जेंडर अनुकूल बजट पहल* को लैंगिक हिंसा व निगरानी, कृषि, स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, कर, पेंशन, खाद्य सब्सिडी नीतियों तथा भूमि-आबंटन में भी उपयोगी पाया गया है।

साभारः रिसोर्स गाइडः मेनस्ट्रीमिंग जेंडर इन वॉटर मैनेजमेंट- 2006

बाल डॉक्टर-स्वच्छता के राजदूत

क्या आप एक नौ वर्ष के डॉक्टर पर भरोसा करेंगी? भारत के बाल डॉक्टर कार्यक्रम के तहत प्राथमिक स्कूल के दर्जनों बच्चे स्वच्छता को प्रोत्साहन देने के लिए प्रशिक्षण ले रहे हैं।

छत्तीसगढ़ में कार्यरत *संकल्प सांस्कृतिक समिति* ने स्कूल व समुदाय में स्वच्छता को प्रोत्साहित करने के लिए एक नवीन कार्यक्रम विकसित किया है। यह कार्यक्रम आठ गांवों के बारह स्कूलों में चलाया जा रहा है और इसमें स्कूली विद्यार्थी बेहतर स्वच्छता और स्वास्थ्य प्रोत्साहन में अगुवाई कर रहे हैं।

हर स्कूल से एक छात्रा/छात्र को बाल डॉक्टर कार्यक्रम के लिए चुना जाता है। इस बाल डॉक्टर के हर विद्यार्थी से मिलकर सुनिश्चित करते है कि वे मूल स्वच्छता नियमों का अनुसरण कर रहे हैं। इन नियमों में नाखून काटना, हाथ धोना, नहाना, बाल बनाना, साफ़ कपड़े पहनना, स्कूल के मैदान को कचरा मुक्त रखना, शौचालय निर्माण व उपयोग के लिए माता-पिता को मनाना तथा बर्तनों की धुलाई-पोंछाई जैसी बातें शामिल है।

ये बाल डॉक्टर हर विद्यार्थी से एक रुपया शुल्क लेकर अपनी 'मेडिकल किट' के लिए साबुन, डेटाल आदि वस्तुएं खरीदते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो 'बाल डॉक्टर' स्वच्छता राजदूत की भूमिका अदा करते हैं और दूसरे विद्यार्थियों को घर व स्कूल साफ़ रखने और शौचालय इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित करते हैं।

इस कार्यक्रम के लिए 'बाल डॉक्टर' का चुनाव माह में दो-तीन बार किया जाता है जिससे हर बच्चे को इसमें शामिल किया जा सके। बाल डॉक्टर चुने जाने के उत्साह में सभी विद्यार्थी व उनके परिवार नियमित रूप से स्वच्छता नियमों का पालन करते हैं।

इन बच्चों के प्रयासों से स्वच्छता से जुड़े संदेश न सिर्फ़ साथी विद्यार्थियों के बीच बल्कि उनके अभिभावकों व परिवारों तक भी पहुंचते है और इस तरह पूरे समुदाय में इनका प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त एक अंतर स्कूली प्रतियोगिता के माध्यम से सबसे प्रभावशाली बाल डॉक्टर का भी चयन किया जाता है जिससे इस मुद्दे पर व्यापक तौर पर समझ बनाई जा सके।

साभारः वाटर एड इंडिया

संवाद

बवाना कल और आज

कैलाश भट्ट

मेरा नाम कैलाश भट्ट है। मैं बवाना जेजे कॉलोनी में रहता हूं। इससे पहले मैं यमुना पुश्ता में रहता था, जहां की बस्तियां सन् 2005 में बवाना जे जे कालोनी में बसाई गई हैं।

बवाना आकर मैंने देखा कि यहां लोगों की स्थिति बहुत दयनीय थी। मूल सुविधाओं के नाम पर सिर्फ़ पक्की सड़क और बड़ी नालियां बनी हुई थीं। पानी के लिए तीन-चार टोंटियां वाला एक स्टैण्ड था जो प्रत्येक ब्लॉक के एक किनारे पर लगा हुआ था। प्रत्येक टोंटी स्टैण्ड के पास एक बोर्ड था जिसमें पानी आने का समय दिया हुआ था। लेकिन पानी की सप्लाई शुरू नहीं हुई थी। जहां प्लॉट थे वह जगह सड़क से 6-7 फुट नीचे थी। ज़मीन में कांटेदार झाड़ियां, खती के बाद की लम्बी-लम्बी नुकीली घास-फूस और गड्ढे थे। सड़कों पर लगी स्ट्रीट लाईट रात के समय जलती नहीं थी। शौचालय बने हुए थे लेकिन बिजली और पानी न होने के कारण अभी बन्द थे। लोगों को पीने के लिए पानी मंदिर पर लगे नल से भरकर लाना पड़ता था। सभी लोग शौच के लिए खुले में ही जाते थे।

2006 में बिजली के खम्बे और कनेक्शन नहीं थे, धीरे-धीरे लोगों ने चोरी की बत्ती जलानी शुरू की। अब पानी आना शुरू हो गया था, पानी का पम्प जेनरेटर/ डीज़ल द्वारा चलाया जाता था। तीन समय पानी आने तो लगा लेकिन पानी के स्रोत बहुत कम होने के कारण लम्बी-लम्बी लाईनें लगानी पड़ती थीं। पानी भरने का काम अधिकतर महिलाएं ही करती थीं। आने वाले पानी का स्वाद अच्छा नहीं था। कुछ लोग मंदिर से पानी लाकर पीते और खाना पकाते थे और आने वाले पानी का इस्तेमाल बाकी अन्य कामों में करते थे। कुछ महिलाएं नहाने और कपड़े धोने के लिए नहर पर जाती थीं, जहां पर छेड़छाड़ की घटनाएं बहुत होती थी। शौचालय भी चालू हो चुके थे लेकिन सुबह के समय शौचालय के प्रयोग के लिए बहुत लम्बी-लम्बी लाईनों से गुज़रना पड़ता है।

ए ब्लॉक के समीप एक स्लम ऑफिस था, जिसे लोग लाल घर के नाम से पुकारते थे। वहां रात को जेनरेटर की मदद से स्ट्रीट लाईट जलने लगी थी। अधिकतर सभी लोग बाहर सड़क पर चारपाई लगाकर सोते थे और गर्मी के मौसम में भी सकून का अहसास करते थे।

बवाना जेजे कॉलोनी में कोई मार्किट न होने के कारण लोगों को बवाना मार्किट से समान खरीदने जाना पड़ता था। समीप में स्कूल न होने और बवाना में छेड़छाड़ और भेदभाव की घटना बढ़ने के कारण लड़कों और लड़कियों ने पढ़ाई छोड़ दी। एक समय ऐसा भी था जब मुझे भी आगे पढ़ने के लिए सोचना पड़ा, पर हम चार दोस्तों ने जो पहले एक ही जगह में पढ़ते थे (पुनर्वास के पहले) दिल्ली गेट, दोबारा स्कूल में जाना शुरू किया। मैं सुबह पांच बजे उठता और शाम को चार बजे घर आता था। शुरू के दिनों में तो बहुत

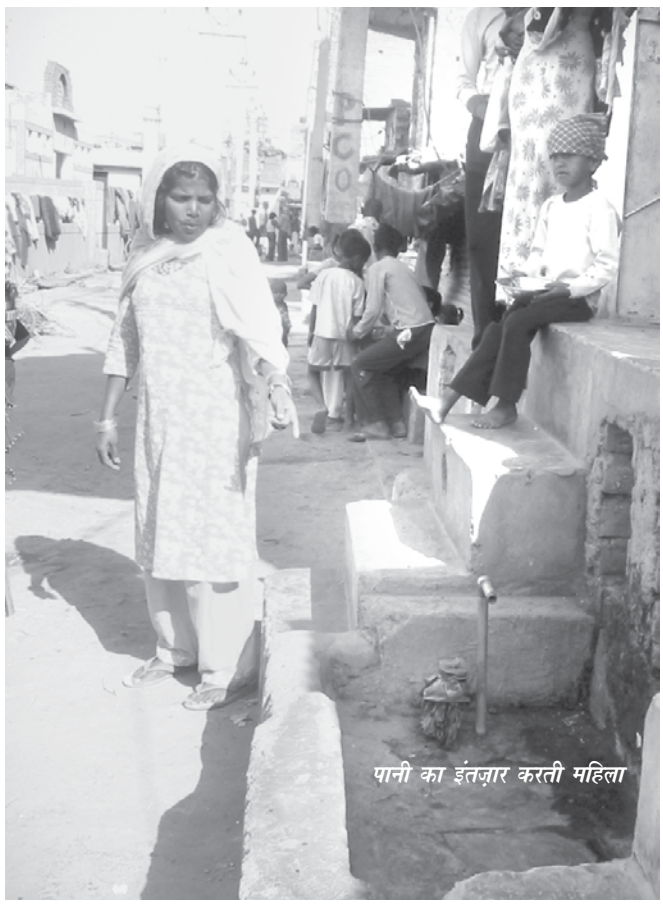

पानी का इंतज़ार करती महिला

मज़ा आता था लेकिन धीरे-धीरे मुझे परेशानी होने लगी। मैं बहुत थक जाता था। स्कूल जाने के लिए हमें सुबह तड़के बस पकड़नी पड़ती थी। स्कूल जाते व आते समय बहुत डर लगता था क्योंकि गांव के लोग हमारे साथ बहुत बुरा व्यवहार करते थे। बस की सीट पर बैठने नहीं देते, सीट से उठा देते, गाली देते और बेवजह मारते थे। मैं और मेरे दोस्त जब भी स्कूल से आते -जाते थे, हमें अपनी पहचान छुपानी पड़ती थी। जब कोई हमसे पूछता था कि कहां रहते हो तो हम उन्हें किसी गांव का नाम बता देते थे।

धीरे-धीरे स्थिति में सुधार आने लगा। वर्ष 2007 में बवाना के स्कूल में लड़कियों/लड़कों का दाखिला शुरू हो गया, कॉलोनी से ही बसें चलनी शुरू हो गई, भेदभाव होता है लेकिन इतने खुले पैमाने में नहीं, गलियों में नालियां व खडंचे डालने का काम शुरू हो गया।

सुविधाएं मिलीं तो उन्हीं सुविधाओं ने समस्याओं को जन्म दिया। गलियों में नालियां जल्दबाज़ी से डाली गई। इन नालियों की बनावट सही न होने के कारण नाली का पानी गटर में जाने की वजह वापस आने लगा। नाली अपनी जगह से हट गई। इससे लोगों ने अपने-अपने घरों के आगे ईंट और मिट्टी लगा ली। अब स्थिति ऐसी है कि लोग न नालियां खुलने देते हैं और न ही खोलते हैं। पानी के हैंडपम्प सूख गये। महिलाएं अब भी कपड़े धोने और नहाने के लिए नहर पर जाती हैं।

इन्हीं दिनों बवाना में लगातार आगजनी की घटनाएं बहुत हो रही थीं। हर दो-तीन महीने में आग लग जाती थी। लगभग 200 से 250 झुग्गियां आग की चपेट में आ गई। दहशत का समय वर्ष 2008 तक चलता रहा। 2009 तक लगभग 90 प्रतिशत घर पक्के बन चुके थे।

अब एन डी पी एल द्वारा बिजली का कनेक्शन लगने से, स्लम विभाग (लाल घर) और शौचालय के जेनरेटर बन्द हो गये हैं। वर्ष 2009 में पानी के स्रोत कम और जनसंख्या की वृद्धि होने और पानी का प्रेशर कम होने के कारण पानी की समस्या बढ़ गई है। पानी की समस्या को लेकर लोग एम एल ए के पास गए। एम एल ए ने प्रत्येक ब्लॉक में लगभग 20-20 टोंटियां लगवा दीं। इसके बाद लोगों ने इसे देख स्वयं ही टोंटियां लगानी शुरू कर दीं। अब पानी के स्रोत तो बढ़ गए लेकिन इतनी सारी टोंटियां

गंदगी का अंबार

होने से पानी का प्रेशर धीरे-धीरे और भी कम हो गया। कुछ लोगों ने अपने घर में इसी पाईप लाईन में मोटर लगा दी। अब ज़्यादा पानी उन लोगों तक पहुंचने लगा जिनके घरों में मोटर लगी थी।

केवल 25 से 30 सफ़ाई कर्मचारियों को पूरे जे जे कॉलोनी साफ़ करने का काम सौंपा गया है। एम सी डी ने अपनी ज़िम्मेदारी दिखावे के रूप में पूरी ली है। इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए इतने कम सफ़ाई कर्मचारी होने से कोई फायदा नहीं होता।

आज बहुत कुछ बदला है। कुछ समस्याएं कम हुई तो कुछ नई सामने आई हैं। पुनर्वास के नाम पर हम पर सरकार की मार आज तक झेल रहे हैं। बीमारियां बढ़ीं तो अस्पताल की दूरी और साधन कम होने से इलाज मुश्किल हो गया। सरकारी नक्शे में बवाना पुनर्वास क्षेत्र में एक स्वास्थ्य केन्द्र की जगह दी है लेकिन आज उन जगह पर नाली का पानी आने से मच्छर और कई तरह की जानलेवा बीमारियां उत्पन्न हो रही हैं। लोगों के पास दो वक्त के खाने हेतु पैसे कमाने के लिए समय पूरा नहीं पड़ता, इन समस्या पर आवाज़ कैसे उठायें। एक उम्मीद थी युवा पीड़ी से। लेकिन नशे ने इस पर पहले से अपना साम्राज्य फैला लिया है। पुलिस की लापरवाई और भ्रष्टाचार ने आज जे जे कॉलोनी को काले धन्धों का घर बनने की पूरी इजाज़त दे दी है। लेकिन मुझे अभी भी उम्मीद है बदलाव आने की और यह बदलाव भी हम युवाओं को ही लाना पड़ेगा।

कैलाश भट्ट *जेजे कॉलोनी में रहते हैं।*

पुस्तक परिचय

नक़्शे से बाहरः दिल्ली में बेदख़ली और पुनर्वास के बाद ज़िन्दगी

प्रकाशक **अर्पिता दास, योडा प्रेस**

लेखक **कल्याणी मेनन-सेन, गौतम भान**

सहयोग **जागोरी**

मूल्य **250/- रुपए**

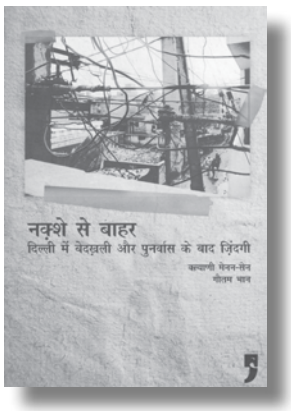

"जनवरी 2004 में केंद्रीय पर्यटन मंत्रालय ने ऐलान किया कि यमुना के किनारे 100 एकड़ की पट्टी को तट विहार के रूप में विकसित किया जाएगा। सरकार का कहना था कि राष्ट्रमंडल खेलों के दौरान सैलानियों को ये जगह बहुत भायेगी। फरवरी और अप्रैल 2004 में इस इलाके के घरों और सामुदायिक इमारतों को ढहा दिया गया जिससे हज़ारों लोग पलक झपते बेघर हो गए। दो साल के शोध अध्ययन पर आधारित यह पुस्तक उजाड़े गए परिवारों में से लगभग 3000 परिवारों की ज़िंदगी का जायज़ा लेती है जिन्हें शहर के हाशिए पर बवाना में पुनर्वास दिया गया था। इस पुस्तक में उनकी पहचान, घरों, अधिकारों और जीवन पर हो रहे हमलों को देखते हुए सम्मानजनक जीवन जीने की उनकी चाह और संघर्ष का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक में बहुत सारे सामाजिक और आर्थिक संकेतकों के प्रसंग में इकट्ठा किए गए आंकड़ों और साक्ष्यों के ज़रिए यह दर्शाया गया है कि बेदखली और पुनर्वास ने पुनर्वासित परिवारों के अधिकारों व आजीविका को कितना कमज़ोर कर दिया है और उन्हें एक ऐसी स्थायी ग़रीबी की अवस्था में धकेल दिया है जहां से निकल पाना असंभव भले न हो मगर बहुत दूर की बात ज़रूर लगती है।

भौतिक परिवेश

जो लोग बस्तियों में नहीं रहते, ऐसे ज़्यादातर लोगों के लिए बस्ती का मतलब अनौपचारिक आबादी और पुनर्वास बस्ती, दोनों से होता है। यह शब्द सुनते ही लोगों के ज़ेहन में संकरी, कीचड़ भरी गलियों में बनी टाट की टूटी-फूटी झुग्गियों, बंद पड़ी नालियों, कूड़े के ढेर, चूल्हे के धुएं से बोझिल हवा, जहां-तहां चल रहे कारखानों से निकलती रासायनिक भाप और गंदे सामुदायिक शौचालयों से उठती सड़ांध की मिली-जुली छवि दिमाग में कौंध जाती है। 'इज़्ज़तदार' कॉलोनियों के आस-पास से बस्तियों को हटाने की मांग करने वाली रेज़ीडेंट्स वेलफ़ेयर एसोसिएशनों द्वारा अदालतों में दायर की गयी याचिकाओं में बार-बार यही तस्वीर उकेरी गयी है। ऐसी याचिकाओं में प्रायः यह दलील दी जाती है कि इन बस्तियों की वजह से लोगों का स्वास्थ्य और पर्यावरण ख़तरे में पड़ रहा है, प्रॉपर्टी की कीमतें गिरती जा रही हैं। बस्तीवासियों को पुनर्वास के लिए राज़ी करने की प्रक्रिया में उन्हें एक साफ़-सुथरी और स्वस्थ, बेहतर ज़िंदगी का सपना दिखाया गया था। मगर बवाना से एक बार गुज़रने पर ही समझ में आ जाता है कि लोगों को जो सपने दिखाए जा रहे थे वे बस सपने ही थे।

हमने आंकड़ों के आधार पर यह दर्शाने का प्रयास किया है कि बवाना में योजना के अनुसार बनाई गई पुनर्वास बस्ती का भौतिक वातावरण बिना किसी योजना के बसाए गए पुश्ता से भी ज़्यादा ख़राब है। हमने यह भी दिखाया कि बवाना में गंदगी की असली वजह लोगों की गलत आदतें नहीं हैं बल्कि यह समस्या पानी

और सफ़ाई जैसी मूलभूत सेवाओं की पर्याप्त व्यवस्था न होने से पैदा हुई है। महिलाओं के साथ हमारी बातचीत से पता चलता है कि ऐसे हालात में पर्याप्त स्वच्छता बनाए रखना नामुमकिन है।

बरसात में पूरी बस्ती एक विशाल दलदल का रूप ले लेती है। गलियां और खुले स्थान गंदे में डूब जाते हैं। सामुदायिक नलों पर कपड़े और बर्तन धोना मुहाल हो जाता है। सफ़ाई का स्तर बहुत नीचे पहुंच जाता है। जो लोग अभी भी कच्ची झुग्गियों में रह रहे हैं या आग लगने के बाद अपने मकानों की मरम्मत नहीं करवा पाए हैं वे ईंटों और पत्थर के टुकड़ों की चौकी बनाकर अपनी सारी चीज़ें उसके ऊपर रख देते हैं। बच्चे इस ढेर के सबसे ऊपर होते हैं।

फ़ोटो: सरिता बलोनी

हिंसा दहनः बवाना के महिला समूह द्वारा हिंसा के विरुद्ध एक प्रतीकात्मक कार्रवाई

ऐसे माहौल में ज़िंदगी की लागत बहुत ऊंची है और इस लागत का सबसे बड़ा हिस्सा औरतों व लड़कियों के कंधे पर आ जाता है। न केवल मूलभूत ज़रूरतों की लागत बढ़ गई है बल्कि महिलाओं व लड़कियों के परिश्रम में तीन-चार घंटे और बढ़ गए हैं। अब उन्हें पानी लाने, खाना पकाने, कपड़े धोने और साफ़-सफ़ाई में पहले से ज़्यादा समय लगाना पड़ता है। बवाना आने के बाद स्कूल छोड़ चुकी ज़्यादातर लड़कियों का कहना है कि अब वे स्कूल नहीं जा सकतीं क्योंकि घर का काम निपटाने में अब उनका पहले से ज़्यादा समय लगता है। ये लड़कियों पुश्ता में भी घरेलू कामों में अपनी मां का हाथ बंटाया करती थी मगर फिर भी स्कूल चली जाती थीं परंतु यहां के बाद ऐसा करना संभव नहीं रहा।

पुस्तक में प्रस्तुत किए गए आंकड़ों से बवाना में स्वास्थ्य की लागतों की भी कलई खुल गई है। इन लागतों में इज़ाफ़े की भी सबसे बुरी मार महिलाओं व लड़कियों पर पड़ रही है। हमने पाया कि लगभग 65 प्रतिशत महिलाएं और 72 प्रतिशत बच्चे सर्वेक्षण से पहले के 6 महीनों में बीमार पड़ चुके थे। बच्चों में दस्त और आंत्रशोध (56 प्रतिशत) जैसी पानी से फैलने वाली बीमारियां सबसे आम हैं। ज़ाहिर ये बीमारियां पीने के गंदे पानी और सफ़ाई की कमी के कारण फैल रही हैं। महिलाओं में स्त्री-रोग संक्रमण सबसे आम हैं। गंदगी, प्राइवेसी की कमी और सीमित जलापूर्ति को देखते हुए यह आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि इन बीमारियों से बचने के लिए शारीरिक स्वच्छता बहुत ज़रूरी होती है।

बवाना में हमने निचले स्तर के जिन अधिकारियों से बात की उनमें से ज़्यादातर का कहना था कि बस्ती के भौतिक वातावरण की चिंता हमारे जैसे लोगों को ही ज़्यादा है जबकि खुद बस्ती में रहने वालों को इसकी कोई परवाह नहीं है। उन्होंने गलियों में फैले कचरे और बंद पड़ी नालियों का हवाला देते हुए कहा कि इस बारे में ग़रीबों के रवैये को सुधारा ही नहीं जा सकता। साथ ही उन्होंने यह भी जोड़ दिया कि यूं भी इन लोगों को इससे बेहतर ज़िंदगी की आदत नहीं है।

माहौल ख़राब हैः तूफान में घिरी औरतें

प्रचलित छवि के अनुसार, बस्तियों में सिर्फ़ गंदगी ही नहीं होती बल्कि हिंसा भी बहुत होती है। बस्तियों के भौतिक वातावरण की तरह यह छवि भी एक हद तक सच्चाई पर आधारित है। फिर भी, यदि यह मान लिया जाए कि हिंसा किसी भी बस्ती की ज़िंदगी का सामान्य हिस्सा होती है तो भी हमारे आंकड़ों व साक्षात्कारों से पता चलता है कि पुनर्वास के बाद आम लोगों, ख़ास तौर से महिलाओं व लड़कियों के लिए बहुत सारे नए संकट पैदा हो गए हैं। महिलाएं बार-बार इस बात का ज़िक्र करती हैं कि 'यहां का माहौल ख़राब है'।

वंचना और दयनीय जीवन परिस्थितियों ने बवाना की महिलाओं को समुदाय में सेवाएं प्रदान करने वाले लोगों की दया पर छोड़ दिया है। उदाहरण के लिए, महिलाएं सार्वजनिक शौचालय तक में नहीं जाना चाहतीं। उनकी परेशानी सिर्फ़ ख़र्चे को लेकर नहीं है बल्कि वे इन शौचालयों में तैनात टॉयलेट अटेंडेंट्स के दुर्व्यवहार से भी तंग रहती हैं। इन अटेंडेंट्स ने शौचालयों की कुंडियां तोड़ दी हैं और जिस समय महिलाएं नहा रही होती हैं उसी समय वे दरवाज़ा खोल कर अंदर झांकने लगते हैं। उनकी दलील सदा यही होती है कि वे देखने आए थे कि महिलाएं कपड़े तो नहीं धो रही हैं। इन अटेंडेंट्स द्वारा लड़कियों के यौन उत्पीड़न की भी कई ख़बरें मिल चुकी हैं। जो महिलाएं पैसे बचाने और इस उत्पीड़न से बचने के लिए आस-पास के खेतों में शौच के लिए जाती हैं उन्हें किसानों और उनके चौकीदारों की गाली-गलौज व हमलों का सामना करना पड़ता है। यदा-कदा हमें रात में टट्टी-पेशाब के लिए खेतों में गई कुछ लड़कियों के बलात्कार और यौन-उत्पीड़न की दबी-दबी चर्चाएं भी सुनाई पड़ीं मगर स्वाभाविक है कि किसी पीड़ित लड़की का नाम कोई नहीं बताना चाहता। ज़्यादातर सेवा प्रदाताओं की तरह अधिकांश टॉयलेट अटेंडेंट्स भी मझौली जातियों के हैं। वे अपने जातीय पूर्वाग्रहों को छिपाने की कोई कोशिश नहीं करते।

निष्कर्ष

हमारे अध्ययन से इस सरकारी दावे की कलई खुल गई है कि पुनर्वास बस्तियां बेतरतीब अनौपचारिक बस्तियों के मुकाबले ज़्यादा स्वच्छ, ज़्यादा सेहतमंद और सुरक्षित हैं। यदि केवल भौतिक परिवेश की जांच की जाए तो भी साफ़ हो जाता है कि मूलभूत बुनियादी ढांचा भी मात्रा और गुणवत्ता, दोनों लिहाज़ से न्यूनतम मानकों के मुकाबले बहुत छोटा है। आवश्यकता से बहुत कम मात्रा में मिल रही इन सेवाओं तक पहुंच भी जेंडर और जातिगत पूर्वाग्रहों के कारण बेहद असंतुलित हो चुकी है जिससे महिलाओं, अल्पसंख्यकों और उत्पीड़ित जातियों पर बहुत गहरा असर पड़ रहा है।

पतनशील भौतिक वातावरण के अलावा भारी हिंसा और व्यक्तिगत असुरक्षा भी एक चिंताजनक समस्या है। महिलाओं व लड़कियों के लिए यह हिंसा और असुरक्षा और भी गंभीर रूप ले चुकी है। घर के भीतर और बाहर, लगभग हर सामाजिक मेलजोल या संपर्क हिंसा अथवा उसकी आशंका में रंगा होता है। इससे लड़कियों के सामने मौजूद सीमित संभावनाएं और भी कुंद हो जाती हैं। जातिगत भेदभाव और हिंसा को बवाना में बच्चों के स्कूल छोड़ने का एक अहम कारण पाया गया। इस तरह के हालात से अगली पीढ़ी की क्षमताओं पर जो दीर्घकालिक असर पड़ने वाले हैं वे नीति निर्माताओं की नज़र से निश्चय ही ओझल नहीं होंगे।

आम जनता की चेतना में पुनर्वास बस्तियों और अनौपचारिक बस्तियों के भीतर सुरक्षा का मुद्दा केवल 'वैध नागरिकों' के लिए पैदा होने वाले ख़तरों के संदर्भ में ही सामने आता है। नीतिगत मंचों और संयुक्त राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधिकार आयोग को भेजी गई रिपोर्ट्स जैसे सार्वजनिक दस्तावेज़ों में मानवाधिकारों के प्रति बार-बार चिंता व्यक्त करने के बावजूद ऐसा लगता है कि मेहनतकश ग़रीबों के परिवेश में स्वास्थ्य और सुरक्षा संबंधी जोखिमों से पैदा होने वाले नाजुक हालात सरकार की प्राथमिकता में नहीं हैं।

दिल्ली को एक 'विश्व स्तरीय महानगर' बनाने के लिए की जा रही उठापटक के मानवीय निहितार्थों का आलोचनात्मक भंडाफोड़ करते हुए "नक़्शे से बाहर" ने शहरी विकास के मौजूदा रुझानों पर कुछ बेचैन करने वाल सवाल खड़े किए हैं और इस बात के लिए बहुत विश्वसनीय ढंग से दबाव पैदा किया है कि शहर के भविष्य को तय करने वाली बहसों में सिर्फ़ संपन्न (या संपन्नता के ख़्वाहिशमंद) नागरिकों की ही नहीं बल्कि शहर के सभी नागरिकों की आवाज़ और नज़र को पूरी मान्यता दी जानी चाहिए।"

पुस्तक के कुछ अंश

फ़िल्म समीक्षा

निर्माता **वॉटर एड इंडिया**

भाषा **अंग्रेज़ी (वेब ऑफ़ सक्सेस)**
हिन्दी (कामयाबी की लहर)

समय **29 मिनट**

कामयाबी की लहर

सुनीता ठाकुर

वॉटर एड इंडिया ने उड़ीसा और तमिलनाडु राज्यों में *इंटिग्रेटिड सेनिटेशन एण्ड हाइजीन फ़ॉर द पूअर* (ग़रीबों के लिए समग्र स्वच्छता व स्वास्थ्य अभियान) की शुरूआत की है। इस अभियान का ध्येय साफ़ पानी, स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति ग्रामीणों में जागरूकता और उन प्रयासों को सशक्त बनाने के लिए सहायता देना है। इस अभियान को लेकर वॉटर एड ने दो वृत्तचित्र बनाए हैं।

पहला वृत्तचित्र उड़ीसा के आठ ज़िलों के छियालीस गांवों में चल रहे अभियान पर आधारित है। 38 प्रतिशत उड़िया आबादी दलितों की है और 57 प्रतिशत आबादी गंभीर संक्रामक रोगों और कुपोषण से ग्रस्त है। उड़ीसा की आबादी में 1/5 मृत्यु संक्रामक रोगों के कारण होती हैं। यहां चिकित्सा सुविधाओं का अभाव है। लोगों में साफ़ सफ़ाई, जीवन और खान-पान के स्वच्छ तरीकों तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता की बहुत कमी है। खुले में शौच करना एक आम चलन है। प्रशासन की ओर से साफ़ पानी और पेयजल की व्यवस्था नहीं हैं।

अगर हम स्वास्थ्य की बात करते हैं तो हमें ज़मीनी स्तर पर लोगों के साथ उनके रहन-सहन और खान-पान के तौर तरीकों को भी समझने और सुधारने की पहल करनी होगी। साफ़ पेयजल का अभाव लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालता है। ऐसे में वर्षाजल संग्रहण और ज़मीनी पानी को दोबारा वापस लाने के तरीकों, कचरा प्रबंधन, फालतू पानी के समुचित उपयोग और पुनर्चक्रण तरीकों के बारे में जन जागरूकता फैलाना बहुत ज़रूरी है।

इन समस्याओं का खासतौर से महिलाओं के स्वास्थ्य और जीवन पर सीधा असर पड़ता है। शौच के मैदान आते-जाते समय लोग उनका मज़ाक उड़ाते हैं। बारिश, कीचड़ आदि में महिलाएं गिर जाती हैं। उन्हें साफ़ पानी की तलाश में बहुत मेहनत करनी पड़ती है। बीमार हो जाने पर उनकी देखभाल और इलाज भी ठीक से नहीं हो पाता।

इन्हीं सब बातों को लक्षित करते हुए *वॉटर एड इंडिया* द्वारा सहभागी गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर इस अभियान की शुरूआत गयी है। अभियान के तहत अनेक स्वैच्छिक और ग्रामीण स्व-सहायता समूहों का निर्माण किया गया है। जो सहभागी संगठनों की मदद से सस्ते और रियायती शौचालय बनाने,

उनके रखरखाव और साफ़ सफ़ाई के बारे में जागरूकता और प्रेरणा देते हैं। महिलाओं के स्व-सहायता समूह बचत समूह चलाते हैं जिससे समूह की महिलाओं को संकट में मदद मिलती है। ये समूह इलाके में साफ़ पानी, पेयजल, सफ़ाई व्यवस्था, स्वच्छता और स्वास्थ्य के बारे में भी जागरूकता पैदा करते हैं। इन स्व-सहायता समूहों के साथ-साथ किशोरियों के समूह भी बनाए गए हैं जहां किशोरियों के साथ भी इन मुद्दों पर चर्चा व स्वास्थ्य की जानकारी दी जाती है।

दूसरी फ़िल्म तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली शहर की है। इसमें किफ़ायती शौचालय निर्माण के साथ-साथ सार्वजनिक शौचालयों के निर्माण और रख-रखाव के लिए उपभोक्ता शुल्क आधारित व्यवस्था का सफल उदाहरण पेश किया गया है। ये सार्वजनिक शौचालय नगरपालिका, स्वास्थ्य विभाग, सहभागी संगठनों के सहयोग से बनाए और चलाए जाते हैं। पचास पैसे का मामूली उपयोग शुल्क वसूल करने के कारण इन शौचालय के रखरखाव, साफ़-सफ़ाई में बहुत सहजता और कामयाबी हासिल हुई है। इन उपयोगिता शुल्क का हिसाब-किताब इलाके के स्व-सहायता समूहों के स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं द्वारा बारी-बारी से किया जाता है। ये स्व-सहायता समूह किफ़ायती शौचालयों के निर्माण में लोगों को आर्थिक मदद भी प्रदान करते हैं। इस ऋण की अदायगी किश्तों में पैसे या शौचालय बनाने में श्रमदान, पदार्थ या वस्तु दान के रूप में की सकती है। उपयोग शुल्क के रूप में जमा पैसे को सार्वजनिक शौचालयों की देखभाल साफ़-सफ़ाई, बिजली-पानी व्यवस्था, मरम्मत आदि के लिए खर्च किया जाता है। पूरे धन का तिमाही ऑडिट किया जाता है। बच्चों की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए बाल सुलभ शौचालय भी बनाए गए हैं, ताकि उन्हें खुले मैदानों में शौच करने की आदत से बचाया जा सके और उन्हें साफ़-सफ़ाई की अहमियत का अंदाज़ा लग सके।

इस अभियान में बेकार पानी के दोबारा उपयोग, कचरा प्रबंधन, भूजल की रक्षा और बढ़ोत्तरी, खुले कुंओं की रक्षा, सूखे कुंओं और हैंडपंपों को पुनर्जीवित करने, पेयजल स्रोत से नहाने-धोने के लिए अलग जगह बनाने, बेकार पानी को किचन गार्डन, खेती के लिए उपयोग करने, के बारे में जानकारी और जागरूकता पैदा की जाती है।

वॉटर एड का यह अभियान आज सफलता की सीढ़ियां चढ़ चुका है। तमिलनाडु के हर ज़िले में आज वॉटर-सेनिटेशन मिशन है। गांवों में साफ़-सफ़ाई को बढ़ावा देने के लिए पुरस्कार योजना शुरू की गई है। सबसे ज़्यादा साफ़ और स्वच्छ वरियापुर गांव को 25,000/- रु. का पहला पुरस्कार दिया गया है। तेराहल को 20,000 रु. का दूसरा पुरस्कार और लक्ष्मीपल्ली को 15,000/- रु. का तीसरा इनाम मिला है। तिरुचिरापल्ली के पन्द्रह गांवों को खुला शौच मुक्त एवं पूर्ण रूप से स्वच्छ क्षेत्र घोषित किया गया है।

इस अभियान की सबसे बड़ी खासियत इसकी सहभागिता और आपसी भागीदारी की सोच और योजनाएं हैं, जो कम से कम लागत में अधिक से अधिक लाभ पैदा करती हैं। इस कार्यक्रम की सफलता ने हमें यह सिखाया है कि केवल सरकार के भरोसे रहने से कुछ हासिल नहीं होगा, आपसी सहयोग और भागीदारी से तस्वीर का रुख ज़रूर बदला जा सकता है।

यह फ़िल्म बस्तियों में साफ़-सफ़ाई के साझे ज़मीनी प्रयासों के प्रति विश्वास पैदा करती है। इस प्रेरणादायक फ़िल्म के माध्यम से शहरों में चल रहे पानी व स्वच्छता अभियानों के लिए एक सकारात्मक नज़रिया विकसित करने में भी मदद मिलेगी। यह फ़िल्म इन मुद्दों से जुड़े व्यक्तियों, कार्यरत महिला व स्वयंसेवी संगठनों के लिए उपयोगी प्रशिक्षण सामग्री भी है।

सुनीता ठकुर *जागोरी की हिंसा हस्तक्षेप टीम से जुड़ी हैं।*

एशियाई शहरों में पानी व स्वच्छता तक महिलाओं की पहुंच व अधिकार (2009-11)

शोध अध्ययन तथा प्रमुख परिणाम

आई.डी.आर.सी, कनाडा के सहयोग के साथ *जागोरी,* दिल्ली तथा *विमेन इन सिटीज़ इंटरनेशल,* कनाडा की संयुक्त अगुवाई

मुख्य भागीदारः एक्शन इंडिया व *सेंटर फ़ॉर बजट एंड गवर्नेंस अकाउंटेबिलिटी, अन्य भागीदारः* विमेंस फ़ीचर सर्विस, कृति, वनवर्ल्ड फाउंडेशन इंडिया

बवाना जेजे पुनर्वास कॉलोनी दिल्ली के उत्तर-पश्चिमी कोने में हरियाणा बार्डर के पास स्थित है। सन 2004 में केन्द्रीय व पूर्वी दिल्ली में रहने वाले गरीब परिवारों को यहां बसा दिया गया था। बवाना में आज करीब 130,000 लोग बसते हैं। *जागोरी* यहां महिलाओं के प्रति हिंसा, युवा नेतृत्व विकास खाद्य शिक्षा व अन्य मूलभूत सुविधाओं के अधिकार पर 2004 से कार्यरत है।

भल्स्वा दिल्ली के पूर्वोत्तर इलाके में दिल्ली ढलाव के पास स्थित है। यहां पर रहने वाले 22,000 लोग उत्तर व पूर्वी दिल्ली से लाकर पुनर्वासित किए गए हैं। *एक्शन इंडिया* इस समुदाय के साथ स्वास्थ्य, पानी स्वच्छता व नेतृत्व क्षमता विकसित करने के लिए प्रयास कर रही है।

इस हस्तक्षेपों का मुख्य उद्देश्य ज़रूरी सुविधाओं तथा महिलाओं की उन तक पहुंच का जायज़ा लेना था। प्राथमिक चरण में महिला सुरक्षा जांच पद्धति की मदद से ज़रूरी सेवाओं के संदर्भ में सुरक्षा के मुद्दों की पहचान करना तथा एक ऐसे ठोस प्रतिमान की स्थापना करना था जिसका उपयोग महिलाएं स्थानीय सरकारी तंत्र व सेवादाताओं को संबोधित करने के लिए कर सकें। शोध प्रतिमान इस सोच पर आधारित था कि इसकी मदद से जल, स्वच्छता, ठोस कचरा प्रबंधन, विद्युत आपूर्ति तथा निकास व्यवस्थाओं में मौजूद लैंगिक-अन्तर को संबोधित किया जा सकेगा। शोध अध्ययन मौजूदा नीतियों व ज़रूरी सेवाओं की समीक्षा, तात्कालिक परिस्थितियों के मूल्यांकन, फोकस ग्रुप चर्चाओं, सुरक्षा जांच व टहल तथा महिलाओं के साक्षात्कार के माध्यम से किया गया।

संकलित तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि बवाना व भल्स्वा पुनर्वास इलाकों में ज़रूरी सेवाएं लगभग नगण्य हैं। आधारभूत सुविधाओं की कमी व खराब व्यवस्था के साथ-साथ जल, सफ़ाई, बिजली, कचरा प्रबंधन की समस्याएं भी व्याप्त है। इन तकलीफ़ों का परोक्ष प्रभाव महिलाओं के समय, श्रम और स्वास्थ्य पर पड़ता है। औरतों को आर्थिक-सामाजिक नुकसान के साथ-साथ हिंसा और मौकों की कमी भी झेलनी पड़ती है। इन तमाम बातों का असर उनके सम्मान, सुख व बतौर नागरिक शहर पर अधिकार को भी प्रभावित करता है।

अध्ययन के परिणामों से यह निकलकर आया कि बवाना व भल्स्वा में समुदाय के साथ काम से कुछ विशेष बदलाव देखने में आए हैं। पहला, बवाना में महिलाओं, समुदाय व सफ़ाई कर्मचारियों के बीच एक आत्मीय संबंध बना है और सभी पक्ष एकजुट होकर समस्याओं को सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं। महिलाओं व लड़कियों के उत्पीड़न के मामलों में कमी भी देखी गई है। साथ ही गहन क्षमता विकास कार्यक्रम के ज़रिए समुदाय में अपने क्षेत्र के प्रति स्वामित्व व ज़िम्मेदारी का विकास भी किया गया है। युवा अपने हक़ों व सुरक्षा के प्रति अधिक सजग हो गए है।

इसी तरह भल्स्वा में भी सकारात्मक बदलाव देखने को मिले हैं। यहां ठोस कचरा प्रबंधन का एक छोटा सा ढांचा विकसित किया गया है तथा पेयजल आपूर्ति में भी सुधार किए गए हैं। पुलिस की गश्त बढ़ने से महिलाओं में सुरक्षा का एहसास बढ़ा हैं। अधिकारों व ज़रूरी सेवाओं के प्रति सजगता से महिलाओं की समस्याओं में सुधार नज़र आया है।

इन हस्तक्षेपों के अलावा *जागोरी* ने इन दोनों पुनर्वास बस्तियों में जल खण्ड में जेंडर अनुकूल बजट विश्लेषण भी किया है। इसका उद्देश्य था बेहतर सेवाओं की आपूर्ति से महिलाओं के समय की बचत की अहमियत को समझना तथा इस अभाव के आर्थिक और अवसरवादी संबंधी नुकसान की समीक्षा करना। इस अध्ययन के तहत बवाना तथा भल्स्वा पुनर्वास क्षेत्रों में पानी, स्वच्छता तथा शौचालय सुविधाओं की भी जांच की गई है। इन ज़रूरी सेवाओं पर होने वाले बजट आबंटन तथा सार्वजनिक व्यय के समग्र मूल्यांकन, दस्तावेज़ों व नीतियों के विश्लेषण तथा नगरपालिका, जल बोर्ड व दिल्ली आवास विकास बोर्ड के अधिकारियों से साक्षात्कार के ज़रिए वकालत व हस्तक्षेप के प्रयासों को अधिक प्रबल बनाने के प्रयास भी किए गए है।

अध्ययन से यह स्पष्ट तौर पर उभरकर आया है कि शहरी जल व स्वच्छता नीतियों व कार्यक्रमों में महिलाओं की उपेक्षा की गई है। सरकारी तंत्रों के आपसी तनावों के कारण इन पुनर्वास बस्तियों में सेवाएं प्रभावित होती है। शहरी स्थानीय पक्षों के बीच साझेदारी व शहरी गरीब व महिलाओं के प्रति संवेदनशीनता का अभाव इन इलाकों की सेवाओं पर परोक्ष प्रभाव डालता है। सेवाओं के लिए नियत धनराशि के उपयोग पर निगरानी और इन पुनर्वास बस्तियों में सामुदायिक ज़िम्मेदारी व स्वामित्व की भावना ही सरकारी पक्षों व सेवादाताओं की पारदर्शिता और जबावदेही स्थापित करने में सहायक रहेगी।

इस शोध अध्ययन की विषयवस्तु तथा प्रमुख परिणामों पर अतिरिक्त जानकारी के लिए जागोरी से सम्पर्क करें। jagori@jagori.org, research@jagori.org

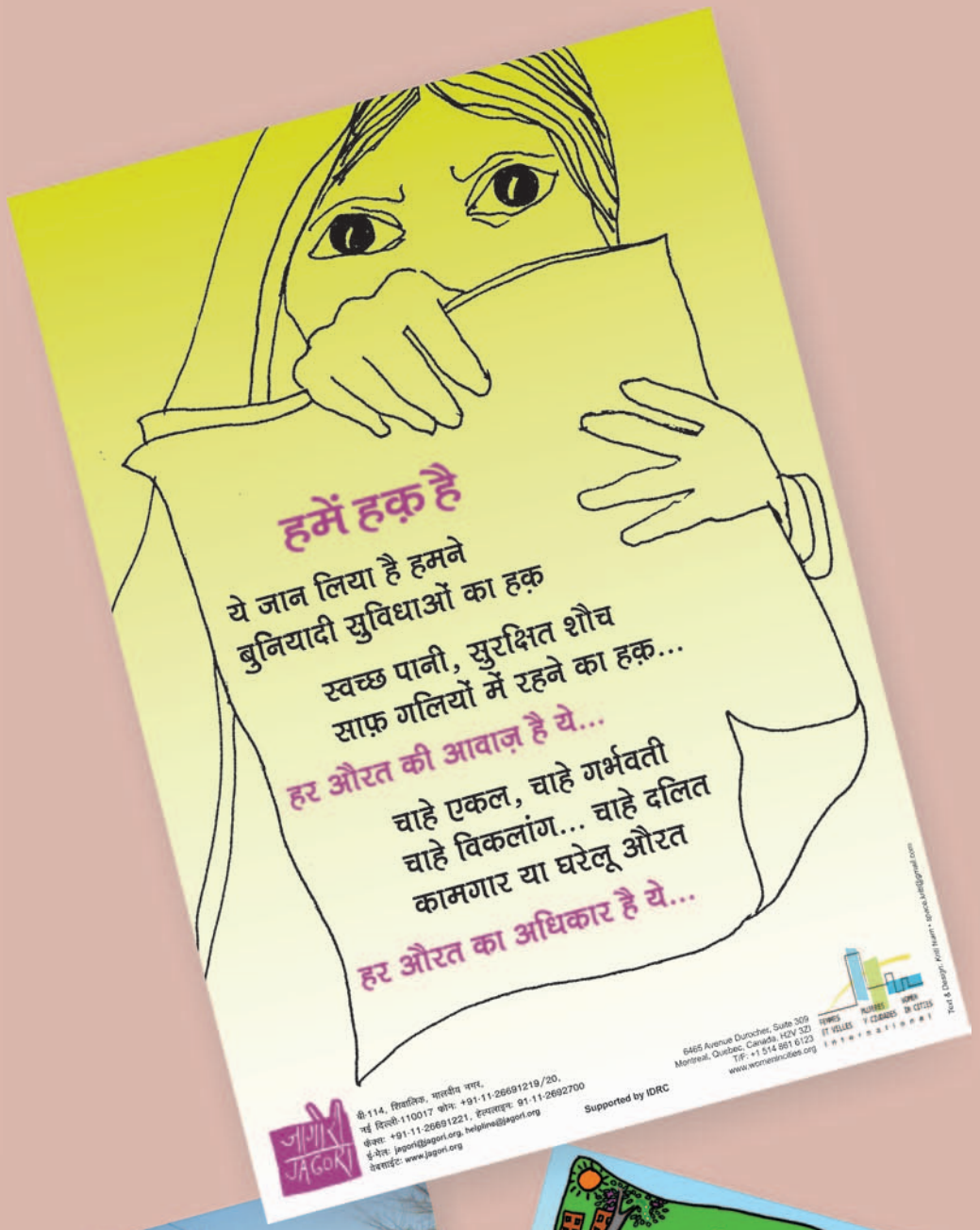

हमें हक़ है
ये जान लिया है हमने
बुनियादी सुविधाओं का हक़
स्वच्छ पानी, सुरक्षित शौच
साफ़ गलियों में रहने का हक़...
हर औरत की आवाज़ है ये...
चाहे एकल, चाहे गर्भवती
चाहे विकलांग... चाहे दलित
कामगार या घरेलू औरत
हर औरत का अधिकार है ये...
जागोरी JAGORI
बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर,
नई दिल्ली-110017 फोन: +91-11-26691219/20,
फैक्स: +91-11-26691221, हेल्पलाइन: 91-11-2692700
ई-मेल: jagori@jagori.org, helpline@jagori.org
वेबसाईट: www.jagori.org
Supported by IDRC
6465 Avenue Durocher, Suite 309
Montreal, Quebec, Canada, H2V 3Z1
T/F: +1 514 861 6123
www.womenincities.org
FEMMES ET VILLES · MUJERES Y CIUDADES · WOMEN IN CITIES
international

जहाँ राशन, पानी
बिजली और साफ़ शौच
तक पहुँच हो हमारी
एक ऐसा शहर, एक ऐसी बस्ती
जहाँ कूड़े का पहाड़ न हो अब
और नालियों में गन्दा पानी न बहे अब
जहाँ सफ़ाई कर्मचारियों की हो भागीदारी
और महिलाओं की हो सुरक्षा,
उनकी ज़रूरतों, उनके नज़रिए का हो डंका
Supported by IDRC

अपनी गलियां अपना मोहल्ला
सबकी ज़िम्मेदारी, सबकी साझेदारी
Supported by IDRC